xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

निवेदन

आज परिषद अत्यन्त पुनीत भावना के साथ माँ भारती के चरणों में "श्रीराम-कुमार भुवालका ग्रन्थमाला" के द्वितीय पुष्प को अर्पित करती है। इस ग्रन्थ-माला का प्रथम पुष्प था मुंशीदेवीप्रसाद कृत "मीराबाई का जीवनचरित्र" जिसे परिषद ने नव-सम्पादित करके सन् १९५४ में प्रकाशित किया था। आशा है कि हिन्दी साहित्य के उपवन को ये नवप्रस्फुटित मुकुल सुरभित करेंगे और श्री शारदा की माला में अर्चना के नव-कुसुम परिषद के द्वारा जुड़ते ही रहेंगे।

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

'अनामिका सार्थवती बभूव'

—::o::o::—

भारतवर्ष केवल अपनी भौगोलिक विचित्रता के लिये ही संसार के आकर्षण का केन्द्र नहीं रहा है, वरन् इसके अतिरिक्त इसके जीवन में ही युगों से कुछ ऐसी विलक्षणता रही है, कि जिसके कारण यहाँ के मनन-शील व्यक्तियों ने तथा विविध कलाकारों ने संसार को केवल नवीन-दर्शन ही नहीं दिया, वरन् नवीन-दृष्टि भी दी। मर्त्यलोक का वासी मानव अमरता की अभिलाषा करे यह अपने आप में कोई विशेष बात नहीं। लेकिन यदि अमरता का वरदान प्राप्त करने में सफल भी हो जाये, तब तो इसे विधाता को मानव की चुनौती ही कहना पड़ेगा। भारत का सांस्कृतिक इतिहास ऐसी अमर विभूतियों की शृंखला से पग-पग पर आमण्डित है। युगों पहले के वेद और उपनिषद्-कालीन ऋषि, वाल्मीकि और व्यास तथा उन्हीं की परम्परा में पाणिनि, भरत, भास, कालिदास, भवभूति, सूर और तुलसी इत्यादि अगणित ऐसे नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे हमें मिलते हैं, जो पार्थिव शरीर को छोड़ कर केवल अपने यश से ही नहीं वरन् अपनी वाणी की साधना को लिये हुए आज भी हमारे साथ हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि ऐसी विभूतियाँ केवल इसी देश को प्राप्त है, प्रायः सभी समुन्नत एवं सभ्य देश ऐसे वरदानों के अधिकारी रहे हैं, किन्तु अपेक्षाकृत समय और संख्या के अनुपात में भारत का भाग्य निश्चय ही अधिक समुज्वल रहा है।

विनाश का ही दूसरा नाम मृत्यु है, और अविनाश जीवन है। शिव जीवन का पोषक है, अशिव विनाश का। यह केवल व्यक्ति के जीवन का ही नहीं वरन् विश्व-जीवन का रहस्य है। शाश्वत् सिद्धान्त

तो यह है कि कारण के अनुरूप ही कार्य होना चाहिये। सृष्टि के आदि कारण शिव और शक्ति अथवा प्रकृति और पुरुष अविनाशी हैं, तब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि उनकी शक्ति से विरचित यह जगत नाशवान् क्यों है ? यह जिज्ञासा चैतन्य मानव की शायद आदि काल से ही रही है और उपनिषदों में उत्तर यही मिला कि शिव और शक्ति का अनायास निरन्तर आंशिक योग ही प्रपंचजन्य सृष्टि का मूल कारण है। इस शाश्वत अनायास संयोग का प्रथम 'आभास' शिवांश 'आकाश' है और शक्त्यांश का 'आभास' प्रपंच का द्वितीय तत्त्व 'वायु' है। 'आकाश' और 'वायु' का युग्म अपने क्रम से अग्नि, जल और पृथ्वी के तत्त्वों को उपस्थित करता है और विविध रूपा सृष्टि प्रत्यक्ष होती है। ये गुह्य रहस्य वेद-कालीन ऋषियों को उद्भासित ज्ञान के रूप मे प्राप्त हो चुके थे, जिनकी अभिव्यक्ति प्रायः उसी काल से वाणी के उन वरद-पुत्रो के द्वारा 'प्राकृत ध्वनि चिह्न,' जो 'अक्षर' के नाम से प्रसिद्ध है, के माध्यम से प्रस्तुत होकर सुरक्षित एवं प्रतिष्टित की गई थी। इस रहस्य का परिचय इस लिये और आवश्यक हो जाता है कि हम भारतीय वाङ्मय मे अनेक महत्त्व-पूर्ण ऐसे शब्द देखते चले आ रहे हैं जो केवल गंभीरार्थी ही नहीं, अत्यन्त गूढार्थी, तथा संकेतार्थी के रूप मे युगो से व्यवहृत होते आ रहे हैं। 'काल,' 'कला,' 'रग,' 'काली,' 'वाणी,' इत्यादि अगणित शब्द जो हमारे द्वारा आज भी व्यवहृत होते हे, उनके विषय में सोचना पड़ता है कि उनकी व्युत्पत्ति क्यो और कैसे हुई होगी। केवल उनकी प्राचीनता ही नहीं वरन् उनकी 'अर्थ-समूह-बद्धता' भी अपना विशेष महत्त्व रखती है। यही जिज्ञासा हमे बाध्य करती है कि हम इन विशिष्ट शब्दों के गठन की अति-प्राचीन पद्धति को जानने की चेष्टा करें। इस पृष्टभूमि मे इन शब्दों से व्यक्त समस्त भारतीय ज्ञानराशि कुछ दूसरे ही रूप मे हमारे सामने आती है। इस रहस्य को समझाने मे परम्परागत प्रचलित देववाणी के विविध स्वीकृत एकाक्षरी-कोष बहुत दूर तक हमारी सहायता करते हैं। इन्हीं के

आधार पर यदि 'काल,' 'काली,' और 'कला' शब्द पर विचार किया जाये तो समझने में देर न लगेगी कि अक्षर 'क' प्रतीक है शिव और शक्ति के उस अनायास संयोग से उद्‌भूत प्रथम तत्त्व शिवांश 'आकाश' का। उसमें 'आ' की मात्रा का योग प्रसार का द्योतक है। अक्षर 'ल' आकाश अंश के साथ 'शक्त्यांश' का प्रतीक है। 'काल' शब्द का मूल अर्थ है 'त्रिगुणात्मिका शक्ति से युक्त व्याप्त आकाश,' जिसमें इस संयोग से उद्‌भूत जगत वर्तमान रहता हुआ सतत् क्रियाशील है; इसके तीन शाश्वत् धर्म हैं—'सृष्टि,' 'स्थिति' और 'लय'। इसी को भारतीय वाङ्मय में कहा गया है 'महा काल'। इस तात्त्विक रहस्यानुभूति के पश्चात् भारतीय ऋषियों को Time और Space जैसी स्थिति-द्वय की स्वीकृति की आवश्यकता कैसे रहती ?

उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर ही स्वर 'ई' का स्वीकृत अर्थ है शिव के धर्म 'आकर्षण' से 'प्रसमन्वित' शक्त्यांश की 'शैवी-क्रिया,' 'का' के उपर्युक्त अंश के साथ शक्त्यांश 'ल' का 'ई' से युक्त यह रूप सिद्ध करता है शब्द 'काली', जिसका मूल अर्थ है सृष्टि का वह 'तात्विक' रूप जो परम-आकर्षण से युक्त है; अर्थात् 'काली' विश्व की वह परम सौन्दर्य-मयी 'तात्विक विभूति' है जिसका धर्म है 'चिदाकर्षण' और जिसकी प्रतिक्रिया है स्रष्ट-विश्व की 'रति-चेतना'।

इसी सिद्धान्त के आधार पर 'कला' को भी समझना होगा। शिवांश 'क' (अर्थात आकाश) में शक्त्यांश 'ल' (अर्थात त्रिगुणात्मिका शक्ति) का 'आ' से युक्त हो जाना अर्थात अति-व्याप्त होकर सृजन शीला हो जाना है। 'आकाश' में त्रिगुणात्मिका शक्ति के 'उदार प्रयोग' से विविध रूपात्मकता की सृष्टि के 'हेतु' अथवा 'अभिकरण' का नाम है 'कला'।

सृजन चाहे 'विधि' का हो या मानव का, अपने मूल मे उपयुक्त तत्त्वों के सन्तुलित एवं आनुपातिक संगठन का ही आश्रयी है। 'संतुलन' और 'अनुपात' की स्थिरता में ही सृष्ट रूप की स्थिरता है और इन दोनों के 'विकार' में विनाश है। कलाकार अपनी रचना

की सृष्टि भी इन्हीं शाश्वत् नियमों के आधार पर ही करता आया है और करता रहेगा। 'महाकाल' जहाँ एक ओर 'आकाश' की सूचना देता है वहीं शक्ति के 'त्रिगुणात्मक' होने का साक्षी भी है। सृष्टि-क्रम में यदि शक्ति की सतोगुण प्रधानता तात्त्विक समन्वय की स्थिति की सूचना है, तो इसी शक्ति की 'रजोगुण-प्रधानता' अपनी सहज प्रक्रियात्मकता के परिणाम-स्वरूप तात्त्विक सन्तुलन और अनुपात को उग्र करती है। और शक्ति की ही वृद्धिगत रजोगुण-प्रधान प्रक्रियात्मकता अनुपात और सन्तुलन में एक सीमा के बाद विकार उत्पन्न कर देती है। सीमा स्पर्शोपरान्त प्रक्रियात्मक आवर्तन शक्ति का 'तमोगुण वृत्त-प्रवेश' है और इससे उत्पन्न विकार जन्य विनाश स्वरूप का परिवर्तनात्मक विध्वंस है।

हमारा मूल प्रश्न था अविनाशी शिव और शक्ति के योग से उत्पन्न विश्व-सृष्टि का विनाश क्यों और कैसे ? उत्तर स्पष्ट है—विश्व सृष्टि के हेतु हैं अविनाशी शिव और शक्ति के संयोग से उद्भूत पंच-तत्त्व, जो अपने कारण के अनुरूप ही अविनाशी हैं किन्तु उनसे निर्मित रूप परिवर्तन-शील होने की वजह से नाशवान हैं। इस परम रहस्य को यदि कोई केवल जान कर ही सन्तुष्ट न हो जाये, वरन् इसके 'दार्शनिक' मर्म का अधिकारी हो जाये तो, निश्चय ही वह 'महाकाल' को चुनौती दे सकता है। इसका नित्य सिद्ध माध्यम है 'कला' की साधना से 'काली' की उपासना। संसार के साहित्य में जिन अमर विभूतियों के नाम समय को चुनौती दिये आज तक हमें मिलते हैं उनकी इस अमरता का रहस्य उपर्युक्त स्थापनाकी अकाट्य साक्षी है।

भारतीय काव्य-परम्परा अपनी प्राचीनता और दिव्य प्रतिभा सम्पन्नता में अप्रतिम है। कालिदास का नाम शिरमौर है। न जाने कितने देशी और विदेशी इतिहास-वेत्ता अपने जीवन के अमूल्य क्षण इस परम-प्रसिद्ध कवि का जीवन वृत्त खोज निकालने में खपा चुके हैं, किन्तु थोड़ी सी प्रचलित किंवदन्तियों को छोड़कर और कोई तथ्य उनके पल्ले न पड़ा। यहीं हमें मानना पड़ता है कि किंवदन्तिया

भी अपना कितना अधिक मूल्य रखती हैं। अति शक्तिशाली सम्राटों के पुराने से पुराने शिलालेख और ताम्रपत्र पृथ्वी के गर्भ में गड़े हुए जहाँ मौन हैं, वहीं लोक प्रचलित किंवदन्तिया हमारे स्मृति-पटल पर अंकित होती हुई आये दिन हमें आवश्यक और उपयोगी ज्ञान से आलोकित करती रहती हैं। कवि-कुल-गुरु कालिदास के संबंध में बटोरी गई समस्त किंवदन्तियों का सार केवल इतना ही निकलता है कि वे जन्म से किसी अति-सामान्य परिवार के ही व्यक्ति थे, दैव संयोग से उनका संबंध अपने समय के सर्वश्रेष्ठ एवं शक्तिशाली राज्य परिवार से हो गया था। किंवदन्तियां तो यह भी सूचना देती हैं कि वे केवल निर्धन परिवार के ही व्यक्ति नहीं थे वरन् विशिष्ट शिक्षा से भी युक्त नहीं थे। जैसी लोक-कथा है राज-कन्या से असन्तुष्ट होकर राज-पुरोहित (शायद वराहामिहिर) ने वैमनस्य के कारण परम विदुषी एवं तेजस्विनी राजकुमारी का विवाह निपट अयोग्य व्यक्ति से करा दिया था। कालान्तर में वही व्यक्ति अपनी तपस्या के बल से विश्व-रमणीयता की अधिष्ठात्री देवी 'काली' का प्रसाद भाजन बन गया और उसे अलौकिक प्रतिभा का वरदान मिला। यही रहस्य है जगत-प्रसिद्ध कवि-कुल-गुरु कालिदास के जीवन का। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि "कालिदास" जैसा लोक-अप्रचलित नाम उस व्यक्ति का जन्म-नाम नहीं हो सकता।*

---

*भारत का पुरावृत्त देश और विदेशके विद्वानों की गवेषणा का प्रधान विषय रहा है। अब तक इस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ भी चुका है। उस काल के जीवन पर निम्नलिखित कतिपय खोज-पूर्ण अध्ययन उपयोगी हैं।

1 Foreign elements in Hindu Population
D R Bhandarker
2 Damodarpur Copper plate Inscriptions
Dr Radha Govind Basak
3. Junagarh Rock Inscriptions of Rudra Damana
Epigraphia Indica Vol VIII

उपर्युक्त आधारों से निष्कर्ष यही निकलता है कि उस काल में 'दास' शब्द के नाम के साथ नामांशके रूपमें जोड़ने की प्रथा नहीं सी थी। 'सदुक्तिकर्णामृतम्' के रचयिता श्रीधर दास तथा उनके पिता वटु दास का उल्लेख है किन्तु ऐसे स्थलों पर 'दास' नामांश नहीं वरन् वर्ग या जाति का द्योतक है।

भले ही कालिदास के जन्म का नाम, जन्मस्थान का नाम या उनके कुल-शील का पता न हो, किन्तु किंवदन्तियों में कही गई उनकी देवी 'काली' की साधना और उनके द्वारा विरचित विपुल काव्य-राशि में सम्भावित पारस्परिक समन्वय का गुप्त रहस्य, हमें अवश्य रूपसे सृष्टि के आदि और चिरन्तन क्रम में निहित शाश्वत नियम का संकेत देता है। 'काली' का उपर्युक्त विवेचन सिद्ध कर चुका है कि सृष्टि की समग्र 'तात्विक परम-रमणीयता' का केन्द्रीभूत प्रतीक ही 'काली' है। रसात्मकता उसकी अनिवार्य चेतना है। इस नाते 'काली' की साधना, उसकी उपलब्धि और उसकी सांगोपांग प्रतिष्ठा रस के माध्यम से ही संभव हो सकती है। कालिदास भी रस-सिद्ध कवि थे। 'कला' के विवेचन से स्पष्ट है कि समस्त सृजनशीलता उसी 'रस' की आश्रयिणी है। सौन्दर्य-शास्त्र, क्या प्राचीन और क्या नवीन भी, एक स्वर से स्वीकार करता है कि सन्तुलन और अनुपातिक नियोजन का समन्वय ही सौन्दर्य का प्राण है, अतएव कला की साधना सौन्दर्य-साधना है। जो अपने विधान में रसाश्रित है। कवि कलाकार होने के नाते ही 'कला' और उससे सम्बद्ध समस्त योजना का 'संयमी साधक' है, इसी लिये वह 'काली' के व्यक्त रूप 'सरस्वती' का उपासक है।

ऋग्वेद से लेकर विविध उपनिषद, पुराण, प्राचीन और अर्वाचीन काव्य तथा उपाख्यान देवी 'सरस्वती' की अर्चना करते नहीं थकते, उनके आह्वान-मंत्र एवं उनकी स्तुति में गाये गये स्तोत्र सभी एक स्वर से उन्हें परम वाञ्छनीय ज्ञान की अधिष्ठात्री के रूप में पूजते चले आये हैं। ज्ञान प्रकाशमय है। ज्ञान की अधिष्ठात्री की कल्पना क्या साकार और क्या निराकार सर्वत्र ही भास्वर, प्रकाशमय स्वीकृत है। उसीके आधार पर वे रूप, गुण, वेशभूषा इत्यादि में भी 'शुभ्र' और 'श्वेतप्रिया' मानी गई है। प्रकाश ज्ञान का प्रतीक है, इसी के विपरीत अन्धकार अज्ञान और अज्ञात का। प्रकाश निर्भयता का दाता है, अन्धकार भय का जनक है। प्रकाश का अर्थ ही है अभिव्यक्ति, अर्थात अभिव्यक्ति के माध्यम से ही प्रकाशन होता है।

'काली' अपनी स्थिति में विशुद्ध 'तात्त्विक' होने के नाते केवल साधनीय है, किन्तु साधनापूर्ण होने पर उसी तात्त्विक सिद्धि की नैसर्गिक अभिव्यक्ति अपनी सहज रसमयता को लिये हुए सरस्वती के रूप में व्यक्त होकर उपासित होती है। यही सिद्धि है कवि और कलाकार की। गोचर और अगोचर विश्व के मूल में उपस्थित चिरन्तन सिद्धान्तों की प्रत्यक्ष प्रतीति के लिये ही मानो कालिदास में हमें 'काली' का प्रसाद और 'वाणी' का वरदान साकार होता देख पड़ता है।

काव्य-रसिक-जन युगों से कहते चले आये हैं कि 'उपमाकालिदासस्य' अर्थात जहाँ तक नवीनतम और मार्मिक उपमाओं का प्रश्न है कालिदास अप्रतिम हैं। इसमें भी रघुवंश में इन्दुमति के स्वयंवर स्थल पर दी गई दीप-शिखा की उनकी उपमा बेजोड़ मानी जाती है। अनेक स्थलों पर कालिदास का उल्लेख 'दीपशिखा-कवि' के नाम से भी मिलता है। लेकिन जरा सोचना पड़ेगा कि कालिदास की कविता का अमरत्व क्या केवल उनकी उपमाओं के आधार पर ही टिका है ? और यदि उनकी अनुपम उपमाओंके वैचित्र्य की सत्ताको भी स्वीकार कर लिया जाए, तब भी विचार करना ही पड़ेगा कि उनमे ऐसी कौनसी शक्ति थी जो उनकी उपमाओं को इतनी ख्याति प्रदान करवा सकी ? उच्चकोटि के आलोचक उनके उक्ति चातुर्य पर भी कम मुग्ध नहीं है, अर्थात 'व्यंग्य' जो काव्य-रीति का मुख्य आधार है, उस पर भी कालिदास का एकछत्र अधिकार था। काव्य के इन मूल तत्वों का विश्लेपण आज तक अगणित आचार्यों की पैनी बुद्धि की गवेषणा का विषय रहा है और निष्कर्प स्वरूप जो तथ्य निर्धारित है वह कुछ इस प्रकार है कि कविता केवल विचार नहीं, केवल उक्ति चातुर्य नहीं, केवल शब्द-सौन्दर्य ही नहीं वरन् इन तीनों का संयुक्त रसमय निर्वाह है जो सिद्ध कवि के द्वारा उसकी सजीव कल्पना-शक्ति के सहारे सम्पन्न होता है। भारतीय वाङ्गमय मे, विशेष कर काव्य-शास्त्र में

कल्पना का महत्त्व विशेष है। इसे कलाकार की शक्ति कहा गया है। कल्पना केवल मानसिक उड़ान नहीं, 'कल्प' शब्द का कोषगत अर्थ है 'सृजन'। कल्पना वह है जो सूक्ष्मतम् भावो को, विचारो को रूप प्रदान कर सके। 'व्यंग्य' शब्द की वह अद्भुत् शक्ति है जो उन्हीं गूढ़ एवं सूक्ष्म विचारों और भावों के 'कल्पित' रूपों को रससिक्त शब्दो के माध्यम से प्रत्यक्ष कर दे। इसी आधार पर 'कल्पना' को 'अलंकार जननी' भी माना गया है। कल्पना के ही द्वारा कवि प्रस्तुत और अप्रस्तुत में सामञ्जस्य स्थिर करता है और विविध अलंकारो की योजना उपस्थित हो जाती है। सजीव कल्पना के बल पर ही कवि सूक्ष्म भावों और विचारों का 'दर्शन' करता है और उसकी रसवती वाणी शब्दगत 'प्रदर्शन' मे उसकी सहायक बनती है। कवि की सूक्ष्मदर्शिता की परीक्षा का यही स्थल है। अतिसाधारण अनुभव या विचार भी सफल कवि के हाथो पड कर असाधारण बन जाता है।

'कुमार सम्भव' मे पार्वती का वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

मध्येन सा वेदि विलग्न मध्या
वलित्रयं चारु वभार वाला।
आरोहणार्थं नव यौवनेन
कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्॥

किसी सुन्दरी के अंग-उपाग की शोभा की ओर आकृष्ट होना सहृदय मानव का सहज व्यापार है। उसे निरखना तथा उसकी सराहना करना भी कुछ वैसा ही व्यापार है, किन्तु उन सौन्दर्य स्थलों में सार्थकता के साथ प्रकृति का निमित्त उसी की वाणी मे समझना और उसे 'रसिकों' को भी समझा देना कवि का ही काम है। 'त्रिवलि' को यौवन आरोहण के साथ काम का सोपान कहना एक सार्थक उक्ति है।

कवि या कलाकार स्वभाव से केवल सौन्दर्यान्वेषी ही नहीं होता, सौन्दर्योपासक भी होता है। कालिदास का तो कहना ही क्या, उनकी

विविध कृतियों का एक-एक शब्द सौन्दर्य की आराधना का मंत्रोच्चार सा करता सुन पड़ता है; लेकिन सौन्दर्य असीम है; यह सत्य जितना अधिक कालिदास की कृतियों में सिद्ध होता है उतना शायद अन्यत्र नहीं। यदि नर और नारी का सौन्दर्य उन्होंने देखा तो पशु, पक्षी, घास, फूल, वन और तड़ाग, सरिता और सागर, पर्वत और आकाश का सौन्दर्य भी उनकी आंखों के सामने प्रतिक्षण झूलता देख पड़ता है। उनकी पैनी लेखनी ने गिन-गिन कर विश्व की विमोहक छबि को आंक कर स्थिर कर देने की सी चेष्टा की है। यक्ष की अलकापुरी भले ही आज हमारी-ऑखों के सामने से ओझल हो गई हो लेकिन 'मेघदूत' के पन्नों में वह युगों तक सुरक्षित रहेगी। कण्व का आश्रम आज अपना अस्तित्व खो चुका है लेकिन वहॉ के मृग-छौने और वहां का पुनीत शान्त वातावरण 'अभिज्ञान शाकुन्तल' की पंक्तियों में अमिट है। सौन्दर्य का यह पारखी उपासक 'कुमार संभव' और 'ऋतु-संहार' में वर्णित उन्मुक्त शृंगार के मिस दीवानेपन की ख्याति भी प्राप्त कर चुका है किन्तु आश्चर्य तो तब होता है कि सुन्दरता का यह चित्रकार अगणित चित्र अंकित करता हुआ भी कहीं किसी नारी के नखशिख का आद्यान्त वर्णन शायद नहीं करता। कालिदास की नारी-सृष्टि एक यक्षिणी को छोड़ कर शायद सभी इतिहास प्रसिद्ध रमणियों को लेकर की गई। परम रूपवती स्त्रियां ही हैं—उर्वशी इन्द्र के अखाड़ेकी अप्सराओं की नायिका है, 'कुमार-संभव' में नगाधिराज की कन्या पार्वती साक्षात सौन्दर्य की मूर्ति हैं, शकुन्तला वेद-व्यास प्रणीत महाभारत की सुकुमार, सहजहृदया परम सरला, लावण्यवती ऋषि कन्या है। ऐसे रम्य प्रतीकों को पाकर भी चिररूपातृप्त कवि कालिदास की तूलिका उनके रूप-विलास की मादकता में न उलझ कर निरन्तर उनके मानसिक और तलस्पर्शी हृदय सौन्दर्य के मर्म-चित्रण में ही तल्लीन देख पड़ती है। यह समस्या आलोचक वर्ग के लिये एक अनबूझ पहेली न बन जाये शायद इसी लिये कवि-कुल-गुरू ने स्वयं ही 'रघुवंश' और 'कुमार संभव' में एक परम सिद्ध दार्शनिक

की भांति जीवन क शाश्वत रहस्य की ओर संकेत करते हुए कहा है कि "महाकाल के राजपथ पर सतत् गतिमान जीवन रथ के दो पहिये है जो स्व -चह ह, किन्तु इनकी गति एक दूसरे के विपरीत है। बढ़ता हुआ शरीर जब क्रमशः क्षीणतानुगामी होता है, मन का पहिया निरन्तर अभिनव प्रौढ़ता और पुष्टता प्राप्त करता है।" अर्थात शारीरिक सौन्दर्य क्षणिक है, किन्तु मानसिक सौन्दर्य अपेक्षाकृत अधिक स्थायी और एपणीय है। कविकी इसी दृष्टिने उसे अन्तरोन्मुख बना दिया, और इसी के कारण शायद उसकी विविध उक्तियों में सत्य का वह स्वर गूंज उठा कि जो उसे आज तक देश और काल की सीमाओं में न बाँध सका। कालिदास भारतके थे लेकिन भौतिकवाद का उपासक पाश्चात्य का अंचल भी उनका कम अनुरागी नहीं। जर्मनी का अति प्रसिद्ध कवि 'गटों' अपने 'फाउस्ट' की भूमिका में कालिदास की वन्दना जिन शब्दों में करता है वे एक उदात्त मानव हृदय के सरल उद्गार है। केवल आज का ही नहीं १६ वीं शताब्दी का रूस भी कालिदास पर विमुग्ध है। 'मेघदूत' के संसार की विवध भाषाओं में अनुवाद सिद्ध कर देते है कि उनकी वाणी की प्रतिध्वनि विश्व व्यापिनी थी। इसका रहस्य है कालिदास का सौन्दर्य के माध्यम से सत्यान्वेषण। सत्य अपने रूप और धर्म में यदि अपरिवर्तन-शील माना गया है तो सार्वदेशिकता और सार्वभौमता उअका लक्षण है।

कलात्मक साहित्य के देश-देशान्तरों में विविध स्वीकृत रूप वर्गीकृत हैं दो प्रकारों मे—नाटक और काव्य। अर्थात दृश्य-काव्य और श्रव्य काव्य। यह भी कालिदास की असाधारण प्रतिभा का ही प्रमाण है कि उन्होंने दोनो रूपों मे काव्य की साधना समान भाव से ही की। नाटक के क्षेत्र में उनके नाटक जहा सर्वश्रेष्ठ माने जाते है वहीं महाकाव्य के क्षेत्र मे उनका 'रघुवंश' और 'कुमार संभव' लासाना हैं। यह सब कुछ लिख चुकने के बाद भी उन्होंने 'मेघ-दूत' के रूप में एक खण्डकाव्य प्रस्तुत किया, जो अपने कलेवर मे लघु होता हुआ काव्यश्री को चरम-सीमा का प्रतीक माना जाता है। किसी कृति

अथवा किसी व्यक्ति की महानता का एक सिद्ध प्रमाण यह भी है कि उसका अनायास प्रभाव किस परिमाण में पड़ा। मेघ-दूत के अनुकरण पर सैकड़ों दूत-काव्यों का लिखा जाना स्वतः उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है। दूत-काव्य का लिखा जाना, जहा तक सूचना प्राप्त है, भारतीय काव्य-जगत की प्राचीन परिपाटी है। इसके संबंध मे स्वयं कविश्रेष्ठ कालिदास की ही स्वीकृति प्राप्त है कि 'मेघदूत' के लिखने में उनकी प्रेरणा का स्तोत्र था वाल्मीकि रामायण का वह प्रसंग जिसमें पवन-सुत हनूमान का प्रसिद्ध दौत्य कर्म वर्णित है। अब सहसा प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि मेघ-दूत की रचना कालिदासने केवल दूत-काव्य लिखने की परम्परा के निर्वाह के निमित्त की ? या इसका कुछ और प्रयोजन था ? यदि दूत-काव्य परम्परा का निर्वाह ही कवि-का निमित्त होता तो संभवतः कवि को ऐसे अनेक स्थल 'रघुवंश' और 'कुमारसंभव' में ही प्राप्त हो जाते। किन्तु उनमें इसका निर्वाह कहीं नहीं किया गया; तब निश्चय ही इसकी रचना का प्रयोजन कुछ और होना चाहिये। मेघ-दूत में स्थल-स्थल पर कवि की रसात्मक उक्तिया कुछ इतनी हृदय स्पर्शिणी हैं, उनमें स्वसंवेद्यता का पुट कुछ इतना उभर आया है, कि जिसे देख कर अनेक आलोचक निष्कर्प निकालते हैं कि 'मेघ-दूत' में कवि के अपने जीवन की घटना का प्रतिबिम्ब देख पड़ता है। किन्तु केवल उपर्युक्त आधार पर इस रचना को आत्मचरित्र मान बैठना भ्रामक बिचार है। काव्य की रसात्मकता सिद्ध ही तब होती है जब कवि स्वसंवेदन-शील होता है। यदि इसमें त्रुटि हो जाए और कवि परसंवेदनशीलोन्मुख होकर रस की सृष्टि करने बैठे तो उसे सफलता शायद ही मिले। इसलिये केवल 'मेघदूत' की अति रसात्मकता के आधार पर उसमें कालिदास के जीवन की झांकी देखने की चेष्टा बहुत सार्थक नहीं मानी जा सकती।

लेकिन इसी के साथ एक अन्य आवश्यक प्रश्न भी उठ खड़ा होता है कि विरह निवेदन के निमित्त मेघ का आश्रय ही कवि के द्वारा क्यों चुना गया ? यह तो ठीक है कि संसार के काव्य में रसराज शृंगार

की सर्वोत्कृष्ट निष्पत्ति वियोगावस्था के चित्रणमें जितनी निखरी उतनी संयोग मे नहीं। यह भी ठीक है कि वियोगावस्था को उभाड़ने में पावस-ऋतुकी ख्याति सर्व-स्वीकृत है, किन्तु वसन्तागम अथवा शिशिर इससे पीछे नहीं, स्वयं कालिदास ने अपने 'ऋतु-संहार' तथा अपनी अन्य कृतियों मे भी स्थल-स्थल पर इस सत्य को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है।

सृष्टि-सौन्दर्य की अधिष्ठात्री महाकाली का वरद-पुत्र, कविता कामिनी का अचल सुहाग कालिदास जैसा परम रस-सिद्ध कवि जो अपनी अनन्त काव्य-राशि मे एक भी निरर्थक अथवा व्यर्थ अक्षर लिखने का दोषी नहीं, वह 'मेघ-दूत' जैसी अपनी जगत-प्रसिद्ध रचना निष्प्रयोजन अथवा असुविनिश्चित निमित्त के क्षणिक आवेश मे कर डाले, यह संभव नहीं। उनकी कृतियों का निश्चित क्रम तो स्थिर नहीं, किन्तु प्रौढ़ाप्रौढ़ विवेक के आधार पर प्रायः स्थिर-सा है कि 'मेघ-दूत' उनकी प्रौढ़तम कृति है। यह निष्कर्ष भी 'मेघ-दूत' के लिखे जाने के प्रयोजन पर प्रकाश डालने में कुछ सहायक सिद्ध हो सकता है। 'मेघ' शब्द देव-वाणीका अति प्राचीन और प्रतिष्ठित शब्द है। इसका उल्लेख ऋग्वेद के सर्व प्रधान देवता इन्द्रके सहचरके रूप में स्वीकृत है। इसका मूल अर्थ है 'वर्षण-करने-वाला'। मेघ जिस तरल पदार्थ का वर्षण करता है वह अनेकार्थी अमृत कहा गया है। अपने 'मेघ-दूत' में ही कवि मेघ को सम्बोधित करते हुए वारम्वार अति आदरसूचक शब्दों का उसके लिये प्रयोग करता है। केवल 'मेघ-दूत' में ही नहीं 'रघुवंश' में भी एक स्थल पर कवि कहता है कि सूर्य पृथ्वी का जल शोषित कर लेता है किन्तु सागर के खारे जल को भी अमृत-तुल्य मधुर बना कर मेघ के द्वारा पृथ्वी को ही फिर दे डालता है। अर्थात निष्कर्ष स्पष्ट है कि मेघ प्रकृति मे व्याप्त मधुर रस का प्रधान वितरक है—जीवन-दाता है। कदाचित् यह मेघ की सहज रसमयता का ही प्रभाव है कि उसके दर्शन मात्र से मानव ही क्यों प्राणीमात्र का हृदय सरसित हो उठता है। मेघकी इस रसमयताकी एक अनूठी लाक्षणिक प्रशस्ति दर्शनीय है-

"प्रायः सर्वो भवति करु[illegible]त्तिराद्रान्तरात्मा"।

केवल इतना ही नहीं जीवन में र[illegible] के असीम मूल्य को आंकता हुआ कवि बहुत आगे बढ़ जाता है, जब वह कहता है—

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्तेत्वभोगात्
इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेम राशी भवन्ति ॥

इन कतिपय उक्तियोंमें कालिदास की चरम रस-साधनाकी सूचना मिलती है। स्पष्ट है कि उसने रस की सत्ता केवल काव्य और कला के क्षेत्र में ही नहीं देखी, वरन् व्यष्टि और समष्टिके जीवनमें यह किस सीमा तक व्याप्त है, इसका अनुभव कवि ने आजीवन किया है। रस का प्रतीक मेघ है, उसीके मिस कवि रस की आराधना करता हुआ अपने इस प्रौढ़तम काव्य में अंतिम घोषणा-सी करता है कि रस ही सार है—लौकिक, अलौकिक और पारलौकिक जीवन के तन्तु भी केवल इसीसे सिंचित हैं। यही रहस्य है 'मेघ-दूत' की रचना का और कालिदास की रस-सिद्धता का।

—ललिता प्रसाद सुकुल



भारतेन्दु



राजा लक्ष्मण सिंह



देवीप्रसाद 'पूर्ण'



महावीर प्रसाद द्विवेदी



सेठ कन्हैयालाल पोद्दार

कालिदास का जीवन चरित्र

(भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र)

पश्चिम प्रदेशीय पण्डित लोग भारतवर्षीय कवियों में कालिदास को सर्वोच्चासन देते हैं। बम्बई के प्रसिद्ध पंडित भाऊदाजी ने केवल कालिदास की कविता ही नहीं पढ़ी वरन् बहुत परिश्रम करके प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ और ताम्रपत्रो से उनका जीवन वृत्तान्त भी संग्रह किया। हमने भी उनके ग्रन्थ से कई एक बातें ग्रहण की हैं।

कालिदास विख्यात महाराजा विक्रम के नवरत्नों में थे। इसके * अतिरिक्त उनके जीवन की और कोई प्रामाणिक बात लोग नहीं जानते। वंगदेश के कई अभिमानी पंडितो ने कालिदास को लंपट ठहरा कर उनके नाम से हास्यरस की कविताओं का प्रचार किया। पाठशाला के युवा ब्राह्मण थोडा सा मुग्धबोध व्याकरण पढ के इन श्लोकों का अभ्यास करके धनिक लोगों का मनोरंजन करते हैं और इसी प्रकार धनी लोगों से प्रति वर्ष कुछ पाते हैं। यथार्थ में तो यह सब कविता कालिदास की नहीं हैं, परन्तु नवीन कवियों की बनाई हुई है। "प्रफुल्लित ज्ञान नेत्र" नामक पद्यमय पुस्तक बंगभाषा में मुद्रित हुई है। इस ग्रन्थ मे लोगों ने मिथ्या कल्पना करके कालिदास में ऊपर लिखा हुआ दोष ठहराया है। इसी प्रकार से इन दिनों अंगरेजी भूमिका सहित एक रघुवंश की सटीक पोथी मुद्रित हुई है। इसमें भी लोगों ने मिथ्या कल्पना किया है। कालिदास ने किसी भी ग्रन्थ में अपना वृत्तान्त कुछ भी नहीं लिखा है, केवल इतना ही प्रकट किया है।

---

* राजा लक्ष्मण सिंह रघुवंश के उल्था में यों लिखते हैं :—कालिदास नाम के कई कवि हुए हैं। उनमें दो मुख्य गिने जाते हैं—एक वह जो राजा वीर विक्रमाजीत की सभा के नौरत्नों में था, दूसरा जो राजा भोज के समय में हुआ। इनमें भी पण्डित लोग पहले को दूसरे से श्रेष्ठ मानते हैं और उसी के रचे हुए रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, ऋतुसंहार इत्यादि काव्य और शाकुतल नाटक विक्रमोर्वसी त्रोटक और और अच्छे अच्छे ग्रन्थ समझे गये हैं।

धन्वन्तरि-क्षपणकामरसिंहशंकु-वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातोवराहमिहिरोनृपतेःसभायारत्नानिवैवररुचिर्नवविक्रमस्य ॥

केवल इतना ही परिचय नवरत्नों का लिखा है। अभिज्ञानशाकुन्तल-ग्रन्थ-कर्ता के इतने ही परिचय से सतुष्ट न रह सके और-और संस्कृत ग्रन्थो से इस विषय का अनुसधान करना उचित है। प्रायः ५०० वर्ष हुए कि कोलाचल मल्लिनाथ सूरि ने कालिदास कृत काव्यो की टीका की है। उन्होने यह टीका दक्षिणावर्त-नाथ की टीका देख कर बनाई। परन्तु वह अब दुष्प्राप्य है। भाषातत्ववित् लासेन साहब ने यह लिखा है कि कालिदास ईसवी दो संवत् मे समुद्रगुप्त की सभा मे वर्तमान थे। लासेन ने एक पत्थर देखा था, जिस पर यह लिखा था कि 'समुद्र गुप्त कवि बंधु काव्य प्रिय' और इसी से वह अनुमान करते हैं कि कविश्रेष्ठ कालिदास उनके सभासद थे। वेण्टली ने एशियाटिक नामक पत्रिका में भोज प्रबध का फरासीसी अनुवाद और 'आईने अकबरी' को देख कर लिखा है कि भोज राजा के राज्यके ८०० वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य की सभा मे कालिदास वर्तमान थे, परन्तु यह बात कदापि नहीं हो सकती। वेंटली ने स्वीय ग्रन्थों मे कई एक ऐसी अशुद्ध बातें लिखी हैं जिनके पढने से बोध होता है कि वह हिन्दुओं का इतिहास कुछ भी नहीं जानते।

कर्नेल विलफोर्ड, प्रिंसेप और एलफिनस्टन ने लिखा है कि कालिदास प्रायः १८०० वर्ष पूर्व वर्तमान थे।

भोज प्रबध के प्रमाणानुसार गुजरात, मालव और दक्षिण के पंडित कहते हैं कि कालिदास सन ११०० ईस्वी मे भोज राजा के सभासद थे। उज्जैन के राज-सिंहासन पर कई विक्रमादित्य और भोजराज नामक राजा बैठे, परतु सबसे अंतके भोजराजा तो सवत् ११०० ईस्वी मे राज्य करते थे। और इससे बोध होता है कि उनके विक्रम ही को भोजराज कहते हैं और उन्हीं की नवरत्न की सभा थी। हमने स्वयं 'भोजप्रबन्ध' पाठ कर के देखा है कि उसमे यह लिखा है कि मालव देशान्तर्गत धारानगराधिप भोज सिन्धुल के पुत्र और मुंज के भ्रातृपुत्र थे। भोज की बाल्यावस्था मे उनके पिता का परलोक हुआ तो उनके पितृव्य मुंज राजपद पर अभिषिक्त हुए और भोज ने उनके मन्त्री बन कर बहुत विद्या उपार्जन किया और इसी प्रकार भोज दिन प्रतिदिन विख्यात होने लगे। तो मुंज के मन मे यह

शंका हुई कि अब लोग हमको पदच्युत करेंगे और यह विचार करने लगे कि किसी प्रकार से भोज का प्राणनाश करूँ। इसी हेतु मुज ने वत्सराज राजा को बुला कर अपना दुष्ट विचार प्रकाशित किया और कहा कि भोज को शीघ्र ही अरण्य में ले जाकर इसका प्राणनाश करो। परन्तु इस राजा ने भोज को तो छिपा रक्खा और पशु के रक्त से भरे हुए खड्ग को राजा मुज के पास भेज दिया। इसको देख कर उन्होंने सानन्द चित्त से पूछा कि भोज ने मानव लीला समाप्त किया? यह सुन वत्सराज ने एक पत्र पर लिख दिया कि—'मान्धाता, जो भोज क्या, एक समय नृप कुल का शिरोमणि था अब परलोक में हैं। रावणारि रामचन्द्र जिन्होंने समुद्र में सेतु बांधा था वह कहाँ हैं? और बहुत से महोदय गण और राजा युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण किया है, परन्तु पृथ्वी उनके साथ नहीं गयी। पर आप के साथ पृथ्वी अवश्य रसातल को जायगी।' इस पत्र के पढते ही मुज का शरीर रोमाञ्चित हुआ और भोज के लिये अत्यन्त व्याकुल हुए। परन्तु जब उन्होने सुना कि भोज जीता है, तो उनको वत्सराज से शीघ्र बुलवा कर धारानगर के राजसिंहासन पर बैठाया और आप ईश्वराराधनके निमित्त अरण्यमे प्रवेश किया। भोज ने पितृ सिहासन पा के बहुत से पण्डितों को अपनी सभा में बुलाया। हमको भोज प्रबन्ध में कालिदास के सहित नीचे लिखे हुये पण्डितों के नाम मिले हैं:—

कर्पूर, कलिग, कामदेव, कोकिल, श्रीदचन्द्र, (?) गोपालदेव, जयदेव, तारेचन्द्र, दामोदर, सोमनाथ, धनपाल, वाण, भवभूति, भाष्कर, मयूर, मल्लिनाथ, महेश्वर, माघ, मुचकुन्द, रामचन्द्र, रामेश्वर, भक्त हरिवंश, विद्याविनोद, विश्ववसु, विष्णु-कवि, शकर, सामदेव, शुक, सीता, सोम, सुवंधु इत्यादि।

सीता अवश्य किसी स्त्री का नाम है और इसी से बोध होता है कि स्त्री शिक्षा उस समय प्रचलित थी। तो हम नहीं समझते कि हम लोगो के स्वदेशीय अब इसको क्यो बुरा समझ के अपने देश की उन्नति नहीं होने देते। देखिये, अमेरिका मे स्त्री शिक्षा कैसी प्रचलित है और जो लोग एक समय अत्यन्त मूर्ख अवस्था में थे अब यूरोप के लोगों को भी दवा लिया चाहते हैं, तो यह देख कर हे हिन्दुस्तानियो! क्या तुमको थोडी भी लज्जा नहीं आती?

पण्डित शेषगिरि शास्त्री ने लिखा है कि बल्लालसेन ने १२० ईस्वी में भोज-

प्रवन्ध वनाया। इससे वोध होता है कि उन्होंने भोजराजके विद्योत्साही और उनके सम्मान की वृद्धि के हेतु कालिदास, भवभूति इत्यादि कवियों को केवल अनुमान ही से भोजराज का समासद ठहराया है। भोजचरित्र में इन सब कवियों के नाम मिलते हैं इसलिये भोजप्रवन्ध को कैसे प्रामाणिक ग्रन्थ कहैं ? इसी भोजराज के चंपू रामायण, सरस्वती कंठाभरण, अमरटीका, राजवार्तिक, पातंजलिटीका और चारुचार्य इत्यादि वहुत से ग्रन्थ मिलते हैं, परन्तु कालिदास, भवभूति आदि कवियो के नाम इनमें से एक भी ग्रन्थ में नहीं लिखे हैं। विश्वगुणादर्शक ग्रन्थ-कार वेदाताचार्य कालिदास श्री हर्ष और भवभूति एक समय भोजराजके सभा में वर्त्तमान थे, जैसा लिखा भी है।

माघश्चौरो मयूरो मुररिपुरपरो भारविः सारविद्यः।
श्री हर्षःकालिदासः कविरथ भवभूत्यादयो भोजराजः॥

इसमें वे भी भोजप्रवन्धप्रणेता वल्लाल के न्याय महाभ्रम में पतित हुए हैं, क्योंकि श्री हर्ष, कालिदास और भवभूति एक काल में वर्तमान नहीं थे। इस विषय में वहुत से प्रमाण भी हैं।

भारतवर्ष के वहुत से राजाओ का नाम विक्रमादित्य था। उज्जयिनी के अधीश्वर विक्रमादित्य जो ५७ ई० पू० में राज्य करते थे और जिन्होंने 'संवत्' स्थापन किया है तो अव हम लोगो को देखना चाहिये कि कालिदास इस विक्रम की सभा में उपस्थित थे वा नहीं। हम्वोल्ट लिखते हैं कि कविवर होरेस और वर्जिल कालिदास के समकालीन थे। इस वात को वहुत से यूरोपीय पण्डितों ने स्वीकार किया है। कर्नेल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा हैं कि 'जव तक हिन्दू साहित्य वर्तमान रहेगा तव तक लोग भोज प्रमार और उनके नवरत्नों को न भूलेंगे।' परन्तु यह ठहराना वहुत कठिन है कि वह गुण-पडित तीन भोजराजो में से किस भोजराज की नवरत्न की सभा थी। कर्नेल टॉड ने यह निरूपण किया है—प्रथम भोजराज सवत् ६३१ में, द्वितीय ७२१ और तृतीय भोजराज संवत् ११०० में वर्तमान थे। 'सिंहासनवत्तीसी', 'वैताल-पचीसी' और 'विक्रमचरित्र' आदि ग्रन्थों में महाराज विक्रमादित्य की वहुत सी अलौकिक कथा भरी हुई हैं, इसी कारण इनमे कोई सत्य इतिहास नहीं मिल सकता। मेरुतुंग कृत 'प्रवन्ध चिन्तामणि' और राजशेखरकृत 'चतुर्विंशति प्रवंध'

में लिखा है कि महाराजा विक्रमादित्य अति शूर वीर और महाबल पराक्रांत नृपति थे। परन्तु उनमे नवरत्न और कालिदास आदि कवियो का कुछ भी वृत्तांत नहीं लिखा है।

जैन ग्रन्थों में लिखा है कि सिद्धसेन नामक जैन पुरोहित विक्रमादित्य के उपदेष्टा थे। परन्तु हम नहीं कह सकते थे कि यह बात कहाँ तक शुद्ध है। और एक जैन लेखक कहते हैं कि ७२३ संवत् मे भोजराज के राज्य में बहुत से लोग उज्जयिनी नगर में जा बसे थे। यह और वृद्ध भोज दोनों जैन मतावलम्बी थे। यह सब वृतांत जैन ग्रन्थों से ज्ञात होते हैं। और और संस्कृत गृन्थों में ये सब प्रमाण नहीं मिलते। वृद्धभोज मनान्तुङ्ग सूरि के शिष्य थे। मनान्तुङ्ग और बाण मयूर भट्ट के समकालकि जैनाचार्य्य थे। बाणकृत हर्षचरित पढने से ज्ञात होता है कि उन्होने सन् ७०० ईस्वी में श्रीकंठाधिपति हर्षवर्द्धन के साथ भेंट किया था। यही कान्यकुब्जाधिपति हर्षवर्द्धन शिलादित्य थे और इन्हीं की सभा में हियांग सियांग नामक चैनिक परिव्राजक बुलाए गए थे। वाण कवि ने हियांगसियांग के ग्रन्थ को पाठ करके अपना गृन्थ बनाया। हर्षवर्द्धन के साथ चैनिकाचार्य्य की भेंट का वृत्तांत हर्ष चरित में 'यवन प्रोक्त पुराण' नामक ग्रन्थ से लिया गया है।

महर्षि कण्व ने अपने कथा 'सरित्सागर' के १८ वें अध्याय में नरवाहन दत्त को विक्रमादित्य का उपन्यास कहा है। उसमें लिखा है कि विक्रमादित्य सन् ५०० ईस्वी में राज्य करते थे। नरवाहन दत्त जैन ग्रन्थ, सरित्सागर और मत्स्य-पुराण के मतानुसार शतानिक के पौत्र थे। नासिक में एक पत्थर की चट्टान मिली है जिस पर विक्रमादित्य का नाम लिखा है और उनको नाभाग, नहुष, जन्मेजय, ययाति और बलराम के नाईं योद्धा वर्णन किया है। पाठकजनो को देखना उचित है कि एक विक्रमादित्य के इतिहास में कितनी गडबड है। लोगों में जो केवल एक ही विक्रमादित्य प्रसिद्ध हैं, इस समय के भारतवर्षीय इतिहासो में कई एक विक्रमादित्यो के नाम मिले हैं। परन्तु हमको उस विक्रमादित्य का इतिहास ज्ञात होना आवश्यक है जिससे हम लोगो का सन्देह दूर हो और यह जान पड़े कि नवरत्नों के अमूल्यरत्न कवि-चक्रचूड़ामणि कालिदास का विक्रमादित्य से कुछ सम्बन्ध है व नहीं।

श्री देवकृत विक्रमचरित में लिखा है कि विक्रमादित्य तीर्थंकर वर्द्धमान के नाश होने के ४७० वर्ष परे उज्जयिनी में राज्य करते थे और इन्होंने ही संवत् स्थापन किया है, परन्तु इस ग्रन्थ में कालिदास का नाम भी नहीं लिखा है।

पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति कहते हैं कि महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव' और 'मेघदूत' बनाने के अनन्तर ३०६८ कलिगताब्द में 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक कालज्ञान शास्त्र बनाया। मेघदूत प्रकाशक बाबू प्राणनाथ पंडित महाशय ने भी इस बात को अपनी भूमिका में लिखा है, परन्तु यह किसी ग्रन्थकार की दृष्टि में नहीं पड़ा कि 'ज्योतिर्विदाभरण' रघुकार कालिदास रचित है। तर्कवाचस्पति महाशयके मत को सहायता देने के निमित्त 'ज्योतिर्विदाभरण' के कतिपय श्लोकों का अनुवाद करके नीचे लिखते हैं, जैसा कालिदास ने लिखा।

मैंने इस प्रफुल्लकर ग्रन्थ को भारतवर्षान्तरगत मालव देश में (जिसमें १८० नगर हैं) राजा विक्रमादित्य के राज्य के समय रचा है ॥ ७ ॥

शंकु, वररुचि, मणि, अंशुदत्त, जिष्णु, त्रिलोचन हरि, घटखर्पर, अमर सिंह और और बहुत से कवियों ने उनकी सभा को सुशोभित किया था ॥ ८ ॥

सत्य, वराहमिहिर, श्रुतिसेन, श्रीवादरायणी, मनित्थ, कुमार सिंह और कई एक महाशय ज्योतिषशास्त्र के अध्यापक थे ॥ ९ ॥

धन्वंतरि, क्षपणक, अमर सिंह, शंकु, वैतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास और वराहमिहिर और वररुचि ये सब महाशय विक्रम के नवरत्न थे ॥ १० ॥

विक्रम की सभा में ८०० छोटे-छोटे राजा और उनकी महासभा में १६ वाग्मी १० ज्योतिषी, ६ वैद्य और १६ वेद-पारग पण्डित उपस्थित रहते थे ॥ ११ ॥

कोई कहते हैं कि यह कवि, मालवा के हर्ष विक्रमादित्य के समय, हज़रत ईसा की छठवीं सदी में था। उस राजा की राजधानी उज्जैन नगरी थी। इसी कारण कालिदास भी वहां रहा था। राजा विक्रम की सभा में नौ रत्न थे, उनमें से एक कालिदास था। कहते हैं कि लड़कपन में इसने कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा, केवल एक स्त्री के कारण इसे यह अनमोल विद्या का धन हाथ लगा। इसकी कथा यों प्रसिद्ध है कि राजा शारदानन्द की लड़की विद्योत्तमा बड़ी पंडिता

थी। उसने यह प्रतिज्ञा की कि जो मुझे शास्त्रार्थ में जीतेगा, उसी को ब्याहूंगी। उस राजकुमारी के रूप, यौवन, विद्या की प्रशंसा सुन कर दूर-दूर से पंडित आते थे पर शास्त्रार्थ के समय उससे सब हार जाते थे। जब पंडितो ने देखा कि यह लड़की किसी तरह वश में नहीं आती और सब को हरा देती है, तो मन में अत्यन्त लज्जित होकर सबने पक्का किया कि किसी ढब विद्योत्तमा का विवाह किसी ऐसे मूर्ख के साथ करावें, जिसमें वह जन्म भर अपने घमंड पर पछताती रहे। निदान वे लोग मूर्ख की खोज में निकले। जाते-जाते देखा कि एक आदमी पेड के ऊपर जिस टहनी के ऊपर बैठा है, उसी को जड से काट रहा है! पंडितों ने उसे महामूर्ख समझ कर बडी आवभगतसे नीचे बुलाया और कहा कि चलो हम तुम्हारा व्याह राजा की लड़की से करा देवें। पर खबरदार राजा की सभा में मुह से कुछ भी बात न कहो, जो बात करनी हो इशारों से कहियो। निदान जब वह राजा की सभा में पहुचा, जितने पंडित वहां बैठे थे, सब ने उठ कर उसकी पूजा की, ऊँची जगह बैठने को दी और विद्योत्तमा से यों निवेदन किया कि ये वृहस्पति के समान विद्वान हमारे गुरु आप के व्याहने को आये हैं। परन्तु इन्होंने तप के लिये मौन साधन किया है। जो कुछ आप को शास्त्रार्थ करना हो, इशारों से कीजिये। निदान उस राजकुमारी ने इस आशय से, कि ईश्वर एक है, एक उंगली उठाई। मूर्ख ने यह समझकर कि धमकाने के लिये उंगली दिखाकर आँख फोड देने का इशारा करती है, अपनी दो उंगलिया दिखलायीं। पण्डितों ने उन दो उंगलियो के ऐसे अर्थ निकाले कि उस राजकुमारी को हार माननी पडी और विवाह भी उसी दम हो गया। रात के समय जब दोनो का एकात हुआ, किसी तरफ से एक ऊँट चिल्ला उठा। राजकन्या ने पूछा कि यह क्या शोर है, मूर्ख तो कोई भी शब्द शुद्ध नहीं बोल सकता था, कह उठा उट्र चिल्लाता है। और जब राजकुमारी ने दुहरा कर पूछा तो, उट्र की जगह उस्ट्र कहने लगा, पर शुद्ध उष्ट्र का उच्चारण न कर सका। तब तो विद्योत्तमा को पडितों की दगाबाजी मालूम हुई और अपने धोखा खाने पर पछताकर फूट-फूटकर रोने लगी। वह मूर्ख भी अपने मन मे बडा लज्जित हुआ। पहिले तो चाहा कि जान ही दे डालू पर सोच समझकर घरसे निकल विद्या उपार्जन मे परिश्रम करने लगा। और थोड़े ही दिनो मे ऐसा पंडित हो

गया, जिसका नाम आज तक चला जाता है। जब वह मूर्ख पंडित होकर घर में आया, तो जैसा आनन्द विद्योत्तमा के मन को हुआ, लिखने के बाहर है। सच है, परिश्रम से सब कुछ हो सकता है।

कालिदास के समय घटखर्पर, वररुचि आदि और भी कवि थे। कालिदास ने काव्य, नाटकादि अनेक ग्रन्थ सस्कृत-भषा में लिखे हैं। इनकी काव्य-रचना बहुत सादी, मधुर और विषयानुसारिणी है। अंगरेज लोग कालिदास को अपने शेक्स-पियर के सदृश उपमा देते हैं। इसके समय में भवभूति नामक एक कवि था। कहते हैं कि उसकी विद्या कालिदास से अधिक थी। परन्तु कवित्वशक्ति कालि-दास की सी न थी। भवभूति कालिदास के श्रेष्ठत्व को मानता था।

कालिदास सारस्वत ब्राह्मण था। उसको आखेट आदि खेलों की बडी चाह थी और उसने अपने ग्रन्थ में इसका वर्णन किया है कि मनुष्य के शरीर पर ऐसे खेलों से क्या-क्या उपकारी परिणाम होते हैं।

विक्रमादित्य ने उसको कश्मीर का राजा बनाया और यह राज्य उसने चार बरस नौ महीने किया।

कालिदास उज्जैन में रहता था, परन्तु उसकी जन्मभूमि कश्मीर थी। देशांतर होने पर स्त्री के वियोग से जो जो दु ख उसने पाये, उनका बखान मेघदूत-काव्य में लिखा है। कालिदास बडा चतुर पुरुष था। उसकी चतुराई की बहुत सी कहानियां हैं और वे सब मनोरजक हैं, यथा उनमें से कई एक ये हैं।

(१) भोजराजा को कवित्व पर बडी प्रीति थी। जो कोई नया कवि उसके पास आता और कविताचातुर्य बताता, तो उसको वह अच्छा पारितोषिक देता, और चाहता तो अपनी सभा में भी रखता। इस प्रकार से यह कवि-मण्डल बहुत बढ गया। उसमें कई कवि तो ऐसे थे कि वे एक बार कोई नया श्लोक सुन लेते, तो उसे कण्ठ कर सकते थे। जब कोई मनुष्य राजा के पास आकर नया श्लोक सुनाता था, तो कहने लगते थे, कि यह तो हमारा पहिले ही से जाना हुआ है और तुरन्त पढ़ कर सुना देते थे।

एक दिन कालिदास के पास एक कवि ने आकर कहा कि महाराज, आप यदि राजा के पास ले चलें और कुछ धन दिला देवें, तो मुझ पर आप का बडा उपकार होगा। जो मैं कोई नया श्लोक बनाकर राजसभा में सुनाऊँ, तो उसका

नूतनत्व मान होना कठिन है इसलिये कोई युक्ति बताइये।

कालिदास ने कहा कि तुम श्लोक में ऐसा कहो कि राजा से मुझको रत्नों का हार लेना है, और जो कुछ मैं कहता हूँ, सो यहां के कई पंडितों को भी मालूम होगा। इस पर यदि पंडित लोग कहें कि यह श्लोक पुराना है, तो तुमको रत्नों का हार मिल जायगा, नहीं नये श्लोक का अच्छा पारितोषिक मिलेगा।

उस कवि ने कालिदास की बताई हुई युक्ति को मानकर वैसा ही श्लोक बनाया और जब उसको राजसभा में पढा, तो कविमंडल चुपचाप हो रहा और उस कवि को बहुत सा धन मिला।

(२) एक समय कालिदास के पास एक मूढ़ ब्राह्मण आया और कहने लगा कि कविराज मैं अति दरिद्री हूँ और मुझमें कुछ गुण भी नहीं है, मुझ पर आप कुछ उपकार करें तो भला होगा।

कालिदास ने कहा, अच्छा हम एक दिन तुमको राजा के पास ले चलेंगे, आगे तुम्हारा प्रारब्ध। परन्तु रीति है कि जब राजा के दर्शन निमित्त जाते हैं, तो कुछ भेंट ले जाया करते हैं * इसलिये मैं जो ये साँटे के चार टुकड़े देता हूँ सो ले चलो। ब्राह्मण घर लौटा और उन साँटे के टुकडों को उसने धोती में लपेट रक्खा। यह देख किसी ठग ने उसके बिन जाने उन टुकडों को निकाल लिया और उनके बदले लकडी के उतने ही टुकड़े बांध दिये।

राजा के दर्शनों को चलने के समय ब्राह्मण ने साँटे के टुकडों को नहीं देखा। जब राजसभा में पहुँचा तब यह काष्ठ की भेंट राजा को अर्पण की। राजा उसको देखते ही बहुत क्रोधित हुआ। उस समय कालिदास पास ही था। उसने कहा, महाराज, इस ब्राह्मण ने अपनी दरिद्ररूपी लकड़ी आप के पास लाकर रक्खी है इसलिये कि उसको जलाकर इस ब्राह्मण को आप सुखी करें। यह बात कवि के मुख से सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उस ब्राह्मण को बहुत धन दिया।

(३) एक समय राजा भोज कालिदास को साथ ले वनक्रीड़ा के हेतु अरण्य को गए, और घूमते घूमते थके माँदे हो, एक नदी के किनारे जा बैठे। इस

---

* राजा कन्या ज्योतिषी, वैद गुरू सुर सिद्ध।
भरे हाथ इन पै गये, शेष कार्य सब सिद्ध॥

को दो वार, तीसरे को तीन वार और चौथे को चार वार सुनने से नया श्लोक कण्ठस्थ हो जाता था। सो जब कोई परदेशी पण्डित राजा की सभा मे नवीन आशय का श्लोक बना के लाता तो वह राजा के सम्मुख पढ के सुनाता था। उस समय राजा अपने पण्डितो से पूछता था कि वह श्लोक नया है वा पुराना। तब वह मनुष्य जिसको कि एक वार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था कहता कि यह पुराने आशय का श्लोक है और आप भी पढ के सुना देता था। इसके अनन्तर वह मनुष्य जिसको दो वार सुनने से कंठ हो जाता था पढ़ के सुनाता और इसी प्रकार वह मनुष्य जिसको तीन वार और वह भी जिसको चार वार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था, क्रम से सब राजा को कंठाग्र सुना देते। इस कारण परदेशी विद्वान अपने प्रयोजन से रहित हो जाते थे और इस बात की चर्चा देश देशातर में फैली। सो एक विद्वान ऐसा देशकालमें चतुर और बुद्धिमान था कि उसके बनाये हुए आशय को इन चार मनुष्यो को भी अंगीकार करना पडा कि यह नवीन आशय है और वह श्लोक यही है।

श्लोक

राजन् श्रीभोजराज त्रिभुवन विजयी धार्मिकस्ते पिताऽभूत।
पित्रा तेन गृहीता नवनवतिमिता रत्नकोटिर्मदीया॥
ता त्वं देहि त्वदीयैस्सकल बुधवरैर्ज्ञायते वृत्तमेत-
न्नोचेज्ञानंतितेवैंनवकृतमथवा देहि लक्षं ततो मे॥ १॥

हे राजा भोज, तीनों लोक के जीतने वाले, तुम्हारे पिता बड़े धर्मिष्ट हुए हैं। उन्होंने मुझसे निन्नानवे करोड रत्न लिया है सो मुझे आप दीजिये और इस वृत्तांत को तुम्हारे सभासद विद्वान जानते होंगे, उनसे पूछ लीजिये। जो वह कहैं कि यह आशय केवल नवीन कविता मात्र है, तो अपने प्रण के अनुसार एक लाख रुपया मुझे दीजिये। इस आशय को सुन कर चारो विद्वानो ने विचाराश किया कि जो इसको पुराना आशय ठहरावें, तो महाराज को निन्नानवे करोड़ द्रव्य देना पड़ता है और नवीन कहने में केवल एक लाख। सो उन चारो ने क्रम से यही कहा कि पृथ्वीनाथ, यह नवीन आशय का श्लोक है। इस पर राजा ने उस विद्वान को चार लाख रुपया दिया।

कालिदास की विद्वता—कवित्व-शक्ति

कालिदास ने यद्यपि अपने जन्म से भारत ही को अलंकृत किया, तथापि वे अकेले भारत ही के कवि नहीं। उन्हें इस भूमण्डल का महाकवि कहना चाहिये। उनकी कविता से भारतवासियों ही की आनन्द-वृद्धि नहीं होती। उसमें कुछ ऐसे गुण हैं कि अन्य देशों के निवासियों को भी उसके पाठ और परिशीलन से वैसा ही आनन्द मिलता है जैसा भारतवासियों को मिलता है। जिसमें जितनी अधिक सहृदयता है, जिसने प्रकृति के प्रसार और मानव-हृदय के भिन्न-भिन्न भावों का जितना ही अधिक ज्ञान प्राप्त किया है, कालिदास की कविता से उसे उतना ही अधिक प्रमोदानुभव होता है। कविकुल की कविता में प्रभावोत्पादन की जो शक्ति है वह अविनाशिनी है। हज़ारों वर्षों से न उसमें कमी हुई है—न उसमें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हुआ है—और न आगे होने का भय ही है। जब तक इस विशाल विश्व के साक्षर जन सच्ची और सरस, स्वाभाविक और सुन्दर, कविता का आदर करते रहेंगे तब तक कालिदास के विषय में उनकी पूज्य बुद्धि भी अक्षुण्ण रहेगी। प्रमोदजनक और शिक्षादायक वस्तुओं को जब तक मनुष्य-समुदाय अपने लिये हितकर समझेगा तब तक कालिदास की कीर्ति यदि उत्तरोत्तर बढ़ेगी नहीं, तो कम भी न होगी।

कालिदास को संस्कृत-कविता रूपी आकाश का पूर्ण चन्द्रमा कहना चाहिये। उनके किस गुण की प्रशंसा की जाय? संस्कृत भाषा पर उनका अधिकार असामान्य था। उन्होंने अपनी कविता में चुन-चुन कर सरल, पर सरस और प्रसंगानुरूप शब्दों की ऐसी योजना की है जैसी आज तक किसी कवि की कविता में नहीं पाई जाती। उनकी प्रतिभा विश्वतोमुखी थी। उनकी कल्पनाओं की पहुँच पृथ्वी, आकाश, पाताल—सब कहीं थी। उनके वर्णन का ढंग बड़ा ही सुन्दर और हृदयस्पर्शी है। व्याकरण, ज्योतिष, अलंकार-शास्त्र, नीति-शास्त्र वेदान्त, सांख्य, पदार्थ-विज्ञान, इतिहास, पुराण आदि जिस शास्त्र, जिस विद्या

और जिस विषय में उन्हें जो बात अपने मतलब की देख पड़ी है उसी को वहां से खींच कर उसके उपयोग द्वारा उन्होंने अपने मनोभावों को मनोहर से मनोहर रूप देकर व्यक्त किया है।

कालिदास और शेक्सपियर

रचना-नैपुण्य और प्रतिभा के विकास-सम्बन्ध में कालिदास की बराबरी का यदि और कोई कवि हुआ है तो वह शेक्सपियर ही है। भिन्न-भिन्न देशों में जन्म लेकर भी सारे संसार को अपने कवित्व-कौशल से एकसा मुग्ध करने वाले यही दो कवि हैं। इनकी रचनायें इस बात का प्रमाण हैं कि इन दोनों के हृदय-क्षेत्र में एक ही सा कवित्व बीज वपन हुआ था। इनके विचार, इनके भाव, इनकी उक्तियां अनेक स्थलों में परस्पर लड़ गयी हैं। जिस वस्तु को जिस दृष्टि से कालिदास ने देखा है प्राय. उसी दृष्टि से शेक्सपियर ने भी देखा है। शेक्सपियर ने अपने नाटकों में भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले मनुष्यों के भिन्न-भिन्न चित्र अङ्कित किये हैं। कालिदास ने भी ठीक वैसा ही किया है। जिसका जैसा स्वभाव है उसका वैसा चित्र उन्होंने उतारा है। जिस कार्य का परिणाम जैसा होना चाहिये वैसा ही निदर्शन उन्होंने किया है। प्रेमियों की जो दशा होती है, उनके हृदय में जिन विकारों का प्रादुर्भाव होता है, वे अपने प्रेम-पात्र को जिस दृष्टि से देखते हैं—कालिदास और शेक्सपियर दोनों के नाटकों में इन बातों का सजीव चित्र देखने को मिलता है, शेक्सपियर के मेकबेथ, ओथेलो, रोमियो जूलियट, मिरण्डा और डेस्डेमोना आदि चित्रों का मिलान कालिदास के दुष्यन्त, अग्निमित्र, पुरुरवा, शकुन्तला, प्रियंवदा आदि के चित्रों से करने पर यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है कि इन दोनों महाकवियों को मानवी स्वभाव का कितना तलस्पर्शी ज्ञान था। कहीं-कहीं पर तो इन महाकवियों के नाटक—पात्रों ने तुल्य प्रसंग आने पर, ठीक एक ही सा व्यवहार किया है। शकुन्तला के विषय में दुष्यन्त कहता है—

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं, हसितमन्यनिमित्त कथोदयम्।

रोमियो भी जूलियट के विषय में प्राय. यही कहता है—She will not stay the siege of loving terms, Nor bide the encounter of assailing eyes

शेक्सपियर और कालिदास में यदि कुछ भेद-भाव है तो यह है कि कालिदास प्रकृति-ज्ञान मे अद्वितीय थे और शेक्सपियर मानव-मनोभाव ज्ञान में। मानव-जाति के मनोभावो का जैसा सजीव चित्र शेक्सपियर ने चित्रण किया है वैसा ही कालिदास ने प्राकृतिक पदार्थों का चित्रण किया है। कालिदास बहिर्जगत के चित्रकार या व्याख्याता थे और शेक्सपियर अन्तर्जगत के। मानवी मनोविकारों का कोई भेद शेक्सपियर से छिपा नहीं रहा। उसी तरह सृष्टि में जितने प्राकृतिक पदार्थ हैं—जितने प्राकृतिक दृश्य हैं—उनका कोई भी रहस्य कालिदास से छिपा नहीं रहा। कवित्व-शक्ति दोनो में ऊँचे दर्जे की थी, परन्तु एक की शक्ति अन्र्तजगत के रहस्यो का विश्लेषण करने की तरफ विशेष झुकी हुई थी, दूसरे की बहिर्जगत के। इस निष्कर्ष से सब लोग सहमत हो या न हो, परन्तु इन दोनो महाकवियो की रचनाओं को खूब ध्यान से पढने और उन पर विचार करने वाले इस बात से अवश्य सहमत होंगे कि कालिदास की तुलना यदि किसी महाकवि से की जा सकती है तो शेक्सपियर ही से की जा सकती है।

कालिदास और भवभूति

भवभूति भी नाटक रचना में सिद्धहस्त थे। करुण रस का जैसा परिपाक उनकी कविता मे देखा जाता है वैसा किसी अन्य कवि की कविता मे नहीं देखा जाता। मानवी हृदय के अन्तर्गतभावो को जान लेने और उनके शब्दचित्र बना कर तद्द्वारा उन्हें सामाजिको को हृदयङ्गम करा देने की विद्या भवभूति को खूब ही 'साध्य' थी। करूण रस का—यत्र तत्र श्रृङ्गार और वीर का भी—भवभूति ने जहां तहां उत्थान किया है वहां बहा घटनाक्रम के अनुसार उस रस का धीरे धीरे तूफान सा आ गया है। कालिदास ने जिस बात को बडी खूबी के साथ थोड़े में कह दिया है उसी को भवभूति ने बेहद बढाया है। मनोभावों को बढा कर वर्णन करना कहीं अच्छा लगता है, कहीं नहीं अच्छा लगता। देश, काल, पात्र और अवस्था का खयाल रख कर प्रसगोपात विषय का आकुचन किंवा प्रसारण किया जाना चाहिए। युद्ध के लिये किसी को उत्तेजित करने के लिये वीर-रस-परिपोषक लम्बी वक्तृता असामयिक और अशोभित नहीं होती। परन्तु जो मनुष्य इष्ट-वियोग अथवा किसी कारण से व्यथित है उसके मुख से

निकली हुई धाराप्रवाही वक्तृता अप्राकृतिक मालूम होती है। थोड़े में अपनी व्यथाकथा कह कर चुप हो जाना ही व्यथा की गम्भीरता का दर्शक है। शकुन्तला के वियोग में दुष्यन्त ने, और मालती के वियोग में माधव ने, जो कुछ कहा है वह इस बात का प्रमाण है कि जिस बात को भवभूति बड़े बड़े श्लोकों में लम्बे लम्बे समासों और चुने हुए शब्दों में, कह कर भी पाठकों का उतना मनोरंजन न कर सक्ते थे, उसी को कालिदास थोड़े में इस खूबी से कह सकते थे कि दर्शकों के चित्त में चुभ सी जाती थी। शब्द चित्रण में भवभूति बढ़े चढ़े थे; भावोद्बोधन में कालिदास। एक उदाहरण लीजिए। भवभूति का शब्द चित्रण है—

सन्तानवाहीरायदि (?) मानुषाणां, दुःखानि सद्बन्धुवियोगजानि।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि, स्रोतः सहस्रैरिव संप्लवन्ते॥

अर्थात्—प्रेमी जन को देखने पर बन्धु-वियोग जन्य दुःख मानों हजार गुणा अधिक हो जाता है वह इतना बढ़ जाता है मानो उससे हजारों सोते फूट निकलते हैं।

इसी बात को—इसी भाव को—देखिए कालिदास थोड़े ही शब्दों में, पर किस खूबी से कहते हैं—

स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो, विवृत द्वारमिवोपजायते।

अर्थात्—स्वजनों के आगे छुपे हुये दुःख को बाहर निकल आने के लिये हृदय का फाटक खुल सा जाता है।

इसी से कहते हैं कि भवभूति के भाव शब्द समूह के सघन वेष्टन से वेष्टित हैं। कालिदास के भावों का शब्दवेष्टन इतना बारीक और थोड़ा है कि वे उसके भीतर झलकते हुए देख पड़ते हैं यही इन दोनों नाट्यकारों की कविता की विशेषता है।

कालिदास की उपमायें

सुन्दर मर्यादापूर्ण और निर्दोष उपमाओं के लिये कालिदास की जो इतनी ख्याति है वह सर्वथा यथार्थ है। किसी देश और किसी भाषा का अन्य कोई कवि इस विषय में कालिदास की बराबरी नहीं कर सकता। इनकी उपमायें

अलौकिक हैं। उनमें उपमान और उपमेय का अद्भुत सादृश्य है। जिस भाव, जिस भाषा विचार, जिस शक्ति को स्पष्टतर करने के लिये कालिदास ने उपमा का प्रयोग किया है उस उक्ति और उपमा का संयोग ऐसा बन पड़ा है जैसा कि दूध-बूरे का संयोग होता है। उपमा को उक्ति से अलग कर देने से वह अत्यन्त फीकी किंवा नीरस हो जाती है। यह बात केवल उपमाओं ही के लिये नहीं कही जा सकती, उपमाओं के सिवा उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त और निदर्शनालंकारों का भी प्रायः यही हाल है। अन्य कवियों की उपमाओं में उपमान और उपमेय के लिंग और वचन में कहीं-कहीं विभिन्नता पाई जाती है, पर कालिदास की उपमाओं में शायद ही कहीं यह दोष हो। देखिये—

(१) प्रवालशोभा इव पादपानां, शृंगार चेष्टा विविधा बभूवुः।

(२) नरेन्द्रमार्गाट्टइव प्रपेदे, विवर्णभावं सस भूमिपालः।

(३) समीरणोत्थेव तरंग लेखा, पद्मान्तरं मानसराजहंसीम्।

(४) बिभर्पि चाकारमनिवृताना, मृणालिनी हैममिवोपरागम्।

(५) पर्य्याप्तपुष्पस्तवकावनम्रा, सचारिणी पल्लविनी लतेव।

(६) नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिनवोदयं नाथमिवौषधीनाम्।

कैसी सुन्दर उपमायें है, कैसी श्रुति-सुखद और प्रसाद गुण-पूर्ण पदावली है। किसकी प्रशंसा की जाय। उपमा की "कोमल-कान्त पदावली" की अथवा हृदयहारिणी उक्ति की?

कालिदास की कुछ उपमायें बहुत छोटी छोटी है, अनुष्टुप् छन्द के एक चरण में वे कही गई हैं। ऐसी उपमाओं में भी वही खूबी है जो लम्बे लम्बे श्लोकों में गुम्फित उपमाओं में है। वे छोटी छोटी उपमायें नीति, सदाचार और लोक-रीति-सम्बन्धिनी सत्यता से भरी हुई हैं। इसी से वे पंडितों के कंठ का भूषण हो रही हैं। साधारण बात-चीत और लेख आदि में उनका बेहद व्यवहार होता है—

(१) आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।

(२) त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलोवोरगक्षता।

(३) विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्।

(४) इन्दोर्हि शरिमादत्ते तन्मिश्रा वर्ज्जयत्यप: ।

(५) उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थित: ।

आदि ऐसी ही उपमायें हैं ।

शास्त्र-ज्ञान

कालिदास के काव्य और नाटक इस बात का साक्ष्य दे रहे हैं कि कालिदास केवल महाकवि ही न थे, कोई शास्त्र ऐसा न था जिसमें उनकी गति न हो। वे असामान्य वैयाकरण थे। अलंकार-शास्त्र के वे पारगामी पंडित थे। संस्कृत-भाषा पर उनकी निस्सीम सत्ता थी। जो बात वे कहना चाहते थे उसे कविता द्वारा व्यक्त करने के लिये सबसे अधिक सुन्दर और भाव-व्यञ्जक शब्दों के समूह उनकी जिह्वा पर नृत्य सा करने लगते थे। कालिदास की कविता में शायद ही कुछ शब्द ऐसे हों जो असुन्दर और अनुपयोगी अथवा भावोद्बोधन में असमर्थ कहे जा सकें। वेदान्त के वे ज्ञाता थे, सांख्य, न्याय और योग के ज्ञाता थे, ज्योतिष के वे ज्ञाता थे, पदार्थ-विज्ञान के वे ज्ञाता थे। लोकाचार, राजनीति, साधारण नीति आदि में भी उनकी असामान्य गति थी। प्रकृति-परिज्ञान के तो वह बहुत पंडित थे। प्रकृति की सारी करामातें, उसके सारे कार्य, उनकी प्रतिभा के मुकुर में प्रतिबिम्बित होकर, उन्हें इस तरह देख पड़ते थे जिस तरह कि हथेली पर रक्खा हुआ आमला देख पड़ता है। वे उन्हें हस्तामलक हो रहे थे। उनकी बहुज्ञता के प्रमाण उनकी उक्तियों और उपमाओं में, जगह जगह पर, चमक रहे हैं।

दर्शन-शास्त्रों का ज्ञान

इस प्रकरण में पहले कहे [illegible] कालिदास की रचनाओं से यद्यपि यह सूचित होता है कि वे शैव थे, शिवोपासना की ओर उनकी प्रवृत्ति अधिक थी, तथापि वे पूरे वेदान्ती थे। वेदान्त के तत्वों को वे अच्छी तरह जानते थे। ईश्वर और जीव, माया और ब्रह्म, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को वे वैसा ही मानते थे जैसा कि वेदान्तियों ने [illegible] माना है। ईश्वर की सर्वव्यापकता [illegible] अभिज्ञान शाकुन्तल का पहला ही श्लोक—"या सृष्टि

स्रष्टुराद्या"—इस बात का साक्षी है। उसमें उन्होंने यह बात स्पष्टता-पूर्वक स्वीकार की है कि ईश्वर की सत्ता सर्वत्र विद्यमान है। परमात्मा की अनन्तता का प्रमाण इस श्लोक में है—

ता तामवस्था प्रतिपद्यमानं स्थितं दशव्याप्यदिशो महिम्ना।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा॥

पुनर्जन्म अथवा आत्मा की अविनश्वरता का प्रमाण रघुवंश के निम्नोद्धृत पद्यार्थ में पाया जाता है—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणा विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः।

कालिदास की योग-शास्त्र-सम्बन्धिनी विज्ञता उनकी इस उक्ति से स्पष्ट है—

तमसः परमापदव्ययं पुरुषं योगसमाधिना रघुः।

माया का आवरण हट जाने और संचित कर्म क्षीणता को प्राप्त हो जाने से आत्मा का योग परमात्मा से हो जाता है। यह वेदान्त तत्व है। इसे कालिदास जानते थे। यह बात भी उनकी पूर्वोक्त उक्ति से सिद्ध है। वेदान्तियों का सिद्धान्त है कि कर्म्मों या संस्कारो का बीज नष्ट नहीं होता। कालिदास ने—

(१) प्रपेदिरे प्राक्तन जन्म विद्याः। और

(२) भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि।

कह कर इस सिद्धान्त को भी स्वीकार किया है। सांख्य शास्त्र-सम्बन्धिनी उनकी अभिज्ञता के दर्शक एक श्लोक का अवतरण किसी पिछले लेख मे पहले ही दिया जा चुका है।

ज्योतिष का ज्ञान

इसमे तो कुछ भी सन्देह नहीं कि कालिदास ज्योतिष-शास्त्र के पण्डित थे। इस बात के कितने ही प्रमाण उनके ग्रन्थों में पाये जाते हैं। उज्जयिनी बहुत काल तक ज्योतिर्विद्या का केन्द्र थी। जिस समय शास्त्र की बड़ी ही ऊर्जितावस्था थी उसी समय, अथवा उसके कुछ काल आगे पीछे, कालिदास का प्रादुर्भाव

हुआ। अतएव ज्योतिष से उनका परिचय होना बहुत ही स्वाभाविक था—

(१) दृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य कामः पुरः शुक्रमिव प्रयाणे।

(२) [illegible] पंचभिरुच्चसंस्थैर्ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी।

(३) मैत्रे मुहूर्ते शशलाञ्छनेन योगं गतासूत्तरफल्गुनीषु।

(४) हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।

(५) तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम्।

इत्यादि ऐसी कितनी ही उक्तियाँ कालिदास के ग्रन्थों में विद्यमान हैं जो इनकी ज्योतिष-शास्त्रज्ञता के कभी नष्ट न होने वाले सार्टिफ़िकेट हैं।

वैद्य-विद्या से परिचय

कालिदास चाहे अनुभवशाली वैद्य न रहे हों, चाहे उन्होंने आयुर्वेद का विधिपूर्वक अभ्यास न किया हो, परन्तु इस शास्त्र से भी उनका थोड़ा बहुत परिचय अवश्य था। और सभी सत्कवियों का परिचय प्रधान प्रधान शास्त्रों से होना ही चाहिये। बिना सर्वशास्त्रज्ञ हुए—बिना प्रधान प्रधान शास्त्रों का बोध प्राप्त किये—कवियों की कविता सर्वमान्य नहीं हो सकती। महाकवियों के लिये तो इस तरह के ज्ञान की बड़ी ही आवश्यकता होती है। [illegible] ने इस विषय में जो कुछ कहा है बहुत ठीक कहा है। वैद्य-विद्या के तत्वों से कालिदास अनभिज्ञ न थे। कुमार-सम्भव के दूसरे सर्ग में तारक के दौरात्म्य [illegible] आदि का वर्णन है। उस प्रसंग में कालिदास ने लिखा है—

तस्मिन्नुपायाः सर्वे नः क्रूरे प्रतिहतक्रियाः।
वीर्यवन्त्यौषधानीव विकारे सान्निपातके॥

[illegible] में [illegible] चिकित्सा के विषय में कवि-कुल गुरु की [illegible] है—

[illegible] वा [illegible]साधनम्।
[illegible] [illegible]माचाराणामायुष्याः प्रतिपत्तयः॥

[illegible] कालिदास का इस शास्त्र से भी गति [illegible]

पदार्थ-विज्ञान से परिचय

ग्रहण के यथार्थ कारण को कालिदास अच्छी तरह जानते थे। इस बात को उन्होंने अपने काव्यों में निःसन्देह रीति से लिखा है। कुमार-सम्भव के—

हरस्तु किञ्चित्प्रविलुप्तधैर्य्य (श्चन्द्रो) दयारम्भ इवाम्बुराशिः।

इस श्लोक से सूचित होता है कि समुद्र में ज्वार भाटा आने का प्राकृतिक कारण भी उन्हें अच्छी तरह मालूम था। ध्रुव प्रदेश में दीर्घकाल तक रहने वाले उषःकाल का भी ज्ञान उन्हें था। उन्होंने लिखा है—

मेरोरूपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्त महस्त्रियामम्।

उनके उषःकाल-सम्बन्धी ज्ञान का यह दृढ प्रमाण है। सूर्य्य की उष्णता से पानी भाफ बन कर उड जाता है। वही बरसता है। इस बात को भी वे जानते थे। कुम्मार सम्भव का चौथा सर्ग इस बात की गवाही दे रहा है—

रविपीतजला तपात्यये पुनरोघेन हि युज्यते नदी।

रघुवंश के—

सहस्र गुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।

इस पद्यार्द्ध से भी यही बात सिद्ध होती है।

"अयस्कान्तेन लोहवत्"—लिख कर उन्होंने यह सूचना दी है कि हम चुम्बक के गुणों से भी अनभिज्ञ नहीं।

राजनीति-ज्ञान

इस विषय में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं। रघुवंश में राजों ही का वर्णन है। उसमें ऐसी सैकड़ों उक्तियाँ हैं जो इस बात की घोषणा कर रही हैं कि कालिदास बहुत बड़े राजनीतिज्ञ थे। राजा किसे कहते हैं, उसका सबसे प्रधान धर्म्म या कर्त्तव्य क्या है, प्रजा के साथ उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए—इन बातों को कालिदास जैसा समझते थे वैसा शायद आजकल के बड़े से भी बड़े राजा और राजनीति निपुण अधिकारी न समझते होंगे। कालिदास

की—"मा पिता पितरम्मासा केवलं जन्महेतव"—सिर्फ यही एक उक्ति इस कथन के समर्थन के लिये यथेष्ट है।

भूगोल-ज्ञान

मेघदूत मे कालिदास ने जो अनेक देशों, नगरो, पर्वतों और नदियों का वर्णन किया है उससे जान पडता है कि उन्हें भारत का भौगोलिक ज्ञान भी बहुत अच्छा था। उन्होंने अनेक देश-दर्शन करके—दूर दूर की यात्रा करके—यह ज्ञान प्राप्त किया होगा। चोल, केरल और पाण्ड्य देश का उन्होंने जैसा वर्णन किया है; विन्ध्य-गिरि, हिमालय और काश्मीर के विषय मे उन्होंने जो कुछ लिखा है, रघुवंश के तेरहवें सर्ग मे भारतीय समुद्र के सम्बन्ध मे जो उक्तियां उन्होंने कही है, उन्हे पढते समय जान पडता है, जैसे कोई इन सब का आंखों देखा हाल लिख रहा हो। उनके इन वर्णनो मे बहुत ही कम भौगोलिक भ्रम है, अतएव यही कहना पड़ता है कि कालिदास ने भारत में दूर दूर तक भ्रमण करके अनेक प्रकार के भौगोलिक दृश्यों का परिज्ञान प्राप्त किया था।

सितम्बर १९११।

कालिदास के मेघदूत का रहस्य

कविता-कामिनी के कमनीय नगर मे कालिदास का मेघदूत एक ऐसे भव्य भवन के सदृश है जिसमें पद्य रूपी अनमोल रत्न जड़े हुए है—ऐसे रत्न, जिनका मोल ताजमहल में लगे हुए रत्नों से भी कहीं अधिक है। ईंट और पत्थर की इमारत पर जल-वृष्टि का असर पड़ता है, आंधी तूफान से उसे हानि पहुँचती है, बिजली गिरने से वह नष्ट-भ्रष्ट भी हो सकती है। पर इस अलौकिक भवन पर इनमें से किसी का कुछ भी जोर नहीं चलता। न वह गिर सकती है न घिस सकती है, न उसका कोई अंग टूट ही सकता है। काल पाकर और इमारतें जीर्ण होकर भूमिसात हो जाती हैं, पर यह अद्भुत भवन न कभी जीर्ण होगा न कभी इसका ध्वंस ही होगा। प्रत्युत इसकी रमणीयता वृद्धि ही को प्राप्त है। इस नगर भी यह सफल है और अमर भी।

अलकाधिपति कुबेर के कर्मचारी एक यक्ष ने कुछ अपराध किया। उसे

कुवेर ने, एक वर्ष तक, अपनी प्रियतमा पत्नी से दूर जाकर रहने का दण्ड दिया। यक्ष ने इस दण्ड को चुपचाप स्वीकार कर लिया। अलका छोड़ कर वह मध्य प्रदेश के रामगिरि नामक पर्वत पर आया। वहीं उसने एक वर्ष बिताने का निश्चय किया। आषाढ़ का महीना आने पर बादल आकाश में छा गये। उन्हे देख कर यक्ष का पत्नी-वियोग-दुःख दूना हो गया। वह अपने को भूल सा गया। इसी दशा मे उस विरही यक्ष ने मेघ की दूत कल्पना करके, अपनी वार्ता अपनी पत्नी के पास पहुंचानी चाही। पहले कुछ थोड़ी सी भूमिका बांध कर उसने मेघ से अलका जाने का मार्ग बताया, फिर संदेश कहा। कालिदास ने मेघदूत में इन्हीं बातो का वर्णन किया है।

मेघदूत की कविता सर्वोत्तम कविता का एक बहुत ही अच्छा नमूना है। उसे वही अच्छी तरह समझ सकता है जो स्वयं कवि है। कविता करने से ही कवि-पदवी नहीं मिलती। कवि के हृदय को—कवि के काव्य-मर्म्म को—जो जान सकते हैं वे भी एक प्रकार के कवि हैं। किसी कवि के कार्य में आकलन करने वाले का हृदय यदि कहीं कवि ही के हृदय सदृश हुआ तो फिर कहना ही क्या है। इस दशा मे आकलनकर्त्ता को वही आनन्द मिलेगा जो कवि को उस कविता के निर्माण करने से मिला होगा। जिस कविता से जितना ही अधिक आनन्द मिले उसे उतनी ही अधिक ऊंचे दरजे की समझना चाहिए। इसी तरह, जिस कवि या समालोचक को किसी काव्य के पाठ या रसास्वादन से जितना ही अधिक आनन्द मिले उसे उतना ही अधिक उस कविता का मर्म्म जानने वाला समझना चाहिए। इन बातो को ध्यान मे रख कर, आइए, देखें, कालिदास ने इस काव्य में क्या क्या करामातें दिखाई हैं। पर इससे कहीं यह न समझ लीजिएगा कि हम कवि या समालोचक होने का दावा करते हैं। हम तो ऐसे महानुभावो के चरणो की रज भी नहीं। तथापि—

नमः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः।

इस कविता का विषय—यहा तक कि इसका नाम भी—कालिदास के परवर्ती कवियो को इतना पसन्द आया है कि इसकी छाया पर हंसदूत, पदाकदूत, पवन-दूत, और कोकिलदूत आदि कितने ही दूत काव्य बन गये हैं। यह इस काव्य की लोक-प्रियता का प्रमाण है।

कालिदास को इस काव्य के निर्म्माण करने का बीज कहा से मिला? इसका उत्तर "इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखीसा"—इत्यादि इसी काव्य मे है।

"इतनो कहत तोहिं मम प्यारी।
जिमि हनुमत को जनक-दुलारी॥
सीस उठाय निरखि धन लैहै।
प्रफुलित - चित ह्वै आदर दैहै॥"

यक्ष की तरह रामचन्द्र को भी वियोग-व्यथा सहनी पडी थी। उन्होंने पवनसुत हनुमान को अपना दूत बनाया था। यक्ष ने मेघ को दूत बनाया। मेघ का साथी पवन है, हनुमान की उत्पत्ति पवन से है। अतएव दोनो मे पारस्परिक सम्बन्ध भी हुआ। यह सम्बन्ध काकतालीय—सम्बन्ध हो सकता है। परन्तु मैथिली के पास रामचन्द्र का सन्देश भेजना वैसा सम्बन्ध नहीं। बहुत सम्भव है, कालिदास को इसी सन्देश-स्मृति ने प्रेरित करके उनसे इस काव्य की रचना कराई हो, बहुत सम्भव है, यह मेघ-सन्देश कालिदास ही का आत्म-सन्देश हो।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि कालिदास की जन्मभूमि काश्मीर है। वे धाराधिप विक्रम के सभा-रत्न थे। यदि यह बात सत्य हो तो काश्मीर से धारा के मार्ग मे जो नदिया, नगर, पर्वत और देश आदि पडते हैं उनसे कालिदास का बहुत अच्छा परिचय रहा होगा। धारा और काश्मीर के आसपास के प्रदेश, नगर और पर्वत आदि भी उन्होंने अवश्य देखे होंगे। मेघ को बतलाये गये मार्ग मे विशेष करके इन्हीं का वर्णन है और यह वर्णन बहुत ही मनोहर और प्राय. यथार्थ है। अतएव कोई आश्चर्य नहीं जो काश्मीर ही कालिदास की जन्मभूमि हो और जिन वस्तुओं और स्थलो का उन्होंने इस काव्य मे वर्णन किया है, उनको उन्होंने प्रत्यक्ष देखा हो।

कवियो की यह सम्मति है कि विषय के अनुकूल छन्दोयोजना करने से वर्ण्य विषय मे सजीवता सी आ जाती है। वह विशेष खुलता है। उसकी सरलता, और सहृदयो को आनन्दित करने की शक्ति, बढ जाती है। इस काव्य मे शृगार और करुण-रस के मिश्रण की अधिकता है। यक्ष का सन्देश कारुणिक उक्तियों से भरा हुआ है। जो मनुष्य कारुणिक आलाप करता है। या जो

प्रेमोद्रेक के कारण अपने प्रेम-पात्र से मीठी मीठी बातें करता है, वह न तो सांप के सदृश टेढी-मेढ़ी चाल चलता है, न रथ के सदृश दौडता ही है। अतएव उसकी बातें भुजंगप्रयात या रथोद्धता या और ऐसे ही किसी वृत्त में अच्छी नहीं लगतीं। वह तो ठहर ठहर कर, कभी धीरे और कभी कुछ उंचे स्वर में, अपने मन के भाव प्रकट करता है। यही जानकर कालिदास ने मन्दाक्रान्ता वृत्त का उपयोग इस काव्य में किया है। और यही जानकर, उनकी देखा-देखी, औरों ने भी, दूत-काव्यों में, इसी वृत्त से काम लिया है।

कवि यदि अपने मन के भाव ऐसे शब्दो में कहे जिनका मतलब, सुनने के साथ ही, सुनने वाले की समझ में आ जाय तो ऐसा काव्य प्रसाद-गुण से पूर्ण कहा जाता है। जिस तरह पके हुए अंगूर का रस बाहर से झलकता है उसी तरह प्रसाद गुण—परिप्लुत कविता का भावार्थ शब्दो के भीतर से झलकता है। उसके हृदयङ्गम होने में देर नहीं लगती। अतएव, जिस काव्य मे करुणार्द्र-सन्देश और प्रेमातिशय-द्योतक बातें हो उसमे प्रसाद-गुण की कितनी आवश्यकता है, यह सहृदय जनों को बताना न पड़ेगा। प्यार की बात यदि कहते ही समझ मे न आ गई—कारुणिक सन्देश यदि कानों की राह से तत्काल ही हृदय में न घुस गया—तो उसे एक प्रकार निष्फल ही समझिए। प्रेमालाप के समय कोई कोष लेकर नहीं बैठता। करुणा-क्रन्दन करने वाले अपनी उक्तियो मे ध्वनि, व्यंग्य और क्लिष्टता नहीं लाने बैठते। वे तो सीधी तरह, सरल शब्दो मे, अपने जी की बात कहते हैं। यही समझ कर महाकवि कालिदास ने मेघदूत को प्रसाद-गुण से ओत-प्रोत भर दिया है। यही सोच कर उन्होने इस काव्य की रचना वैदर्भी रीति में की है—चुन चुन कर सरल और कोमल शब्द रखे हैं, लम्बे लम्बे समासो को पास तक नहीं फटकने दिया।

देवताओं, दानवों और मानवो को छोड कर कविकुल-गुरु ने इस काव्य में एक यक्ष को नायक बनाया है, इसका कारण है। यक्षो के राजा कुवेर हैं। वे धनाधिप हैं। ऋद्धियां और सिद्धियां उनकी दासियां हैं। सासारिक सुख, धन ही की बदौलत प्राप्त होते हैं। जिनके पास धन ही नहीं वे इन्द्रियजन्य सुखो का यथेष्ट अनुभव नहीं कर सकते। कुवेर के अनुचर, कर्मचारी और पदाधिकारी सब यक्ष ही हैं। अतएव कुवेर के ऐश्वर्य का थोड़ा भाग उन्हे भी

अवश्य ही प्राप्त होता है। इससे जिस यक्ष का वर्णन मेघदूत में है उसके ऐश्वर्यवान और वैभव-सम्पन्न होने में कुछ भी सन्देह नहीं। उसके घर और पत्नी आदि के वर्णन में यह बात अच्छी तरह साबित होती है। निर्धन होने पर भी प्रेमी जनों में पति-पत्नी-सम्बन्धी प्रेम की मात्रा कम नहीं होती। फिर जो जन्म ही से धन-सम्पन्न है—जिसने लड़कपन ही से नाना प्रकार के सुख भोग किये हैं—उसे पत्नी वियोग होने से कितना दुःख, कितनी हृदय व्यथा, कितना शोक-सन्ताप हो सकता है, इसका अनुमान करना कठिन नहीं। ऐसा प्रेमी यदि दो-चार दिन के लिये नहीं, किन्तु पूरे साल भर के लिये, अपनी प्रेयसी से सैकड़ों कोस दूर फेंक दिया जाय तो उसकी विरह-व्याकुलता की मात्रा बहुत ही बढ़ जायगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। ऐसे प्रेमी का वियोग-ताप वर्षा में और भी अधिक भीषणता धारण करता है। उस समय इस बात का निश्चय किया जा सकता है कि इस प्रेमी का प्रेम कैसा है और वह अपनी प्रेयसी को कितना चाहता है। कालिदास ने इस काव्य में आदर्श प्रेम का चित्र खींचा है। उस चित्र की सविशेष हृदयग्राही यथार्थता व्यंजक करने के लिये यक्ष को नायक बना कर कालिदास ने अपने कवि-कौशल की पराकाष्ठा कर दी है। अतएव आप यह न समझ लीजिए कि कवि ने यों ही, बिना किसी कारण के, विप्रयोग-शृंगार वर्णन करने के लिये, यक्ष का आश्रय लिया है।

विषय वासनाओं की तृप्ति के लिये ही जिस प्रेम की उत्पत्ति होती है वह नीच प्रेम है। वह निन्द्य और दूषित समझा जाता है। नित्यज प्रेम अवान्तर बातों की कुछ भी परवा नहीं करता। प्रेम-पथ में प्रयाण करते समय आई हुई बाधाओं को वह कुछ नहीं समझता। विघ्नों को देख कर वह मुस्करा देता है। क्योंकि इन सब को उसके सामने हार माननी पड़ती है। मेघदूत का प्रेमी नित्यज प्रेमी है। उसका हृदय बड़ा ही उदार है। उसमें प्रेम की मात्रा इतनी अधिक है कि ईर्ष्या, द्वेष क्रोध, हिंसा आदि विकारों के लिये जगह ही नहीं। यक्ष को उसके स्वामी कुबेर ने निकाल दिया परन्तु उसने उसके कारण, अपने स्वामी पर जरा भी क्रोध प्रकट नहीं किया। उसको एक भी बुरे और कड़े शब्द से याद नहीं किया। उसकी सारी विप्रयोग-पीड़ा का कारण कुबेर था। पर उसकी निन्दा करने का उसे खयाल तक नहीं हुआ। फिर, देखिए, उसने अपनी

मूर्खता पर भी आक्रोश-विक्रोश नहीं किया। यदि वह अपने काम में असावधानता न करता तो क्यों वह अपनी पत्नी से वियुक्त कर दिया जाता। अपने सारे दुःख शोक का आदि कारण वह खुद ही था। परन्तु उसको इसका भी खयाल नहीं। उसने अपने को भी नहीं धिक्कारा। वह धिक्कारता कैसे ? उसके हृदय मे इस प्रकार के भावो के लिये जगह ही न थी। उसका हृदय तो अपनी प्रेयसी के निव्र्याज प्रेम से ऊपर तक लबालब भरा हुआ था। वहा पर दूसरे विकार रह कैसे सकते थे ?

जो ऐसे सच्चे प्रेम-मद से मत्त हो रहा है, जिसकी सारी इन्द्रिया अन्यान्य विषयो से खिच कर एक मात्र प्रेम-रस मे सर्वतोभाव से डूब रही हैं, जिसके प्रेम-परिपूर्ण हृदय में और कोई सांसारिक भावनायें या वासनायें आने का साहस तक नहीं कर सकतीं, वह यदि अचेतन मेघ को दूत बनावे तो आश्चर्य ही क्या ? जो मत्त है और जो संसार की प्रत्येक वस्तु में अपने प्रेम-पात्र को देख रहा है उसे यदि जड-चेतन का भेद मालूम रहे तो फिर उसके प्रेम की उच्चता कैसे स्थिर रह सकती है ? वह प्रेम ही क्या जो इस तरह के भेद-भाव को दूर न कर दे। कीट-योनि में उत्पन्न पतंगों के लिये दीप शिखा की ज्वाला अपने प्राकृत दाहक गुण से रहित मालूम होती है। महा-प्रेमी यक्ष को यदि मेघ की अचेतनता का खयाल न रहे तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं। फिर, क्या यक्ष यह न जानता था कि मेघ क्या चीज है ? यह मेघदूत के आरम्भ ही मे कहता है—

"घाम धूम नीर औ समीर मिले पाइ रहे
ऐसो घन कैसे दूत - काज भुगतावेगो।
नेह को सदेसो हाथ चातुर पठैबो जोग
बादर कहो जी ताहि कैसै को सुनावे गो॥
बाढी उत्कण्ठा जक्ष - बुद्धि बिसरानी सब
वाही सों निहार्यो जानि काज करि आवेगो।
कामातुर होत हैं सदाई मति हीन तिन्हे
चेत और अचेत माहि भेद कहां पावेगो॥"

उस समय यक्ष को केवल अपनी प्रेयसी का खयाल था। वही उसके तन

और मन में बसी हुई थी। अन्य सांसारिक ज्ञान उसके चित्त से एकदम तिरोहित हो गया था। वह एक प्रकार की समाधि में निमग्न था। इस समाधिस्थ अवस्था में यदि उसने निर्जीव मेघ की दूत कल्पना किया तो कोई ऐसी बात नहीं की जो समझ में न आ सके। कवि का काम वैज्ञानिक के काम से भिन्न है। वैज्ञानिक प्रत्येक पदार्थ को उसके यथार्थ रूप में देखता है। परन्तु यदि कवि ऐसा करे तो उसकी कविता का सौन्दर्य प्राय: सारा विनष्ट हो जाय। कवि को आविष्कर्ता या कल्पक न समझना चाहिए। उसकी सृष्टि ही दूसरी है। वह निर्जीव को सजीव और सजीव को निर्जीव कर सकता है। अतएव मध्य-भारत से हिमालय की तरफ जाने वाले पवन-प्रेरित मेघ को सन्देश-वाहक बनाना जरा भी अनौचित्य-दर्शक नहीं। फिर, एक बात और भी है। कवि का यह आशय नहीं कि मेघ सचमुच ही यक्ष का सन्देश ले जाय। उसने इस बहाने विप्रयुक्त यक्ष की अवस्था का वर्णन मात्र किया है और उसके द्वारा यह दिखाया है कि इस तरह के सच्चे वियोगी प्रेमियों के हृदय की क्या दशा होती है, उन्हें कैसी कैसी बातें सूझती हैं, और उन्हें अपने प्रेम पात्र तक अपना कुशलवृत्त पहुचाने की कितनी उत्कंठा होती है।

यक्ष को अपने मरने-जीने का कुछ खयाल न था। खयाल उसे था केवल अपनी प्रियतमा के जीवन का। "दयिता जीवितालम्बनार्थम्"—ही उसने सन्देश भेजा था। उसकी दयिता का जीवन उसके जीवन पर अवलम्बित था। उसके मरने अथवा जीवित होने में सन्देह उत्पन्न होने से उसकी दयिता जीती न रह सकती थी। अतएव यक्ष का सन्देश उसकी यक्षिणी को जीती रखने की रामबाण औषधि थी। यह औषधि वह जिसके द्वारा पहुचाना चाहता था, उसके सुख-दु:ख का भी उसे बहुत खयाल था इसी से उसने मेघ के लिये ऐसा मार्ग बतलाया जिससे जाने में जरा भी कष्ट न हो। उसके मार्ग श्रम का परिहार होता रहे, अच्छे अच्छे दृश्य भी उसे देखने को मिलें, देवताओं और तीर्थों के दर्शन भी हों। ऐसा न होने से मेघ भी क्यों उसका सन्देश पहुचाने में राज़ी होता? फिर एक बात और भी है। विरह-कातर यक्ष का सन्देश उसकी प्रियतमा तक पहुचा कर उसे जीवनदान देना कुछ कम पुण्य का काम नहीं। संसार में परोपकार की बड़ी महिमा है। उसे करने का मौका भी मेघ को मिल

रहा है। फिर भला क्यों न वह यक्ष का सन्देश ले जाने के लिये राजी होता? रामगिरि से अलका तक जाने में विदिशा, उज्जयिनी, अवन्ती, कनखल, रेवा, सिप्रा, भागीरथी, कैलास आदि नगरों, नदियो और पर्वतों के रमणीय दृश्यों का वर्णन कालिदास ने किया है। उन्हें देखने की किसे उत्कंठा न होती? कौन ऐसा जीव हृदय-हीन होगा जो उज्जयिनी महाकाल के और कैलास मे शकर-पार्वती के दर्शनो से अपनी आत्मा को पावन करने की इच्छा न रखे? कौन ऐसा आत्म-शत्रु होगा जो जंगल मे लगी हुई आग को जल की धारा से शान्त करके चमरी आदि पशुओं को जल जाने से बचाने का पुण्य सचय करना न चाहे? मार्ग रमणीय, देवताओं और तीर्थों के दर्शन, परोपकार करने के साधन—ये सब ऐसी बातें हैं जिसके लिये मूढ से मूढ मनुष्य भी थोडा बहुत कष्ट खुशी से उठा सकता है। मेघ की आत्मा तो आर्द्र होती है, सन्ततो को सुखी करना उसका विरुद है। अतएव वह यक्ष का सन्देश प्रसन्नता पूर्वक पहुंचाने को तैयार हो जायगा, इसमे सन्देह ही क्या।

अपनी प्रियतमा को जीवित रखने में सहायता देनेवाले मेघ के लिए यक्ष ने जो एसा श्रमहारक और सुखद मार्ग बतलाया है यह उसके हृदय के औदार्य्य का दर्शक है। कालिदास ने इस विषय में जो कवि-कौशल दिखाया है उसकी प्रशसा नहीं हो सकती। यदि मेघ का मार्ग सुखकर न होता—और, याद रखना चाहिए, उसे बहुत दूर जाना था—तो कौन आश्चर्य था कि वह अपने गन्तव्य स्थान तक न पहुँचता। और, इस दशा मे, यक्षिणी की क्या गति होती, इसका अनुमान पाठक स्वयं ही कर सकते हैं। इसी दुःखद दुर्घटना को टालने के लिये ऐसे अच्छे मार्ग की कल्पना कवि ने की है।

आप कहेंगे, यह नित्यज प्रेम कैसा कि यक्ष ने, सन्देश मे, अपनी वियोगिनी पत्नी का कुशल-समाचार तो पीछे पूछा, पहले अपने ही को "अव्यापन्न" कर अपना कुशल वृत्त बतलाने और अपनी ही वियोग व्यथा का वर्णन करने लगा।

इससे तो यही सूचित होता है कि उसे अपने सुख दुःख का अधिक खयाल था, यक्षिणी के सुख दुःख का बहुत ही कम। नहीं, ऐसा न कहिए। यक्ष का यह काम उलटा आपके इस अनुमान का खंडन करता है। आप इस बात को

भूल गये हैं कि यक्षिणी का जीवन यक्ष के जीवन पर ही अवलम्बित है। उसमें संशय उत्पन्न होने से वह जीवित नहीं रह सकती। मेघदूत को पढ़ कर यदि इतना भी न जाना तो कुछ न जाना। यक्षिणी के प्राणावलम्बन का हेतु यक्ष है। अतएव उसी के कुशल-समाचार सुनने से यक्षिणी अपना जीवन धारण करने में समर्थ हो सकती है। यक्ष को स्वार्थी न समझिए। वह अपनी दशा का वर्णन करके अपनी स्वार्थपरता नहीं प्रकट करता, वह अपनी दयिता के जीवन को नष्ट होने से बचाने की दवा कर रहा है। यक्ष के सन्देश की पहली पंक्ति है—

"भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहम्"।

आप देखिए, इसमें यक्ष ने "भर्तु:" पद रख कर पूर्वोक्त आशय को कितनी स्पष्टता से प्रकट किया है। जान-बूझ कर उसने सन्देश के आदि ही में पति-शब्द का वाचक भर्तृ-शब्द इसी लिये रखा है जिसमें यक्षिणी को तत्काल इस बात का ज्ञान हो जाय कि मेरा पति जीवित है। वियोगिनी पतिव्रताओं के कान में यह शब्द जैसी अमृत वर्षा करता है उसका अन्दाजा सभी सहृदय कर सकते हैं। कवि यदि चाहता तो 'भर्तुर्मित्रं' की जगह 'मित्र भर्तुः' कर सकता था। उससे भी छन्द की गति में व्याघात न आता। परन्तु नहीं, उसने यक्षिणी के कान में सबसे पहले 'भर्तु:।' का सुनाना ही उचित समझा।

पूर्वोक्त पंक्ति में 'भर्तु' का समकक्ष और अर्थ-विशेष से भरा हुआ 'अविधवे' पद भी है। सन्देश की पहली पंक्ति में इसके रखने का भी कारण है। यक्ष ने इसके द्वारा अपनी सहधर्मचारिणी को यह सूचित किया है कि तू विधवा नहीं हो गई—सौभाग्यवती बनी हुई है, तेरा स्वामी अब तक जीता है। इससे अधिक आनन्ददायक समाचार स्त्री के लिये क्या हो सकता है? यक्ष का उसकी पत्नी के लिये सचमुच ही 'श्रोत्रपेय' है।

स्त्रियां नहीं चाहतीं कि उनके पति के प्रेम का छोटे से छोटा अंग भी कोई और ले जाय। वे उनके सर्वांश पर अपना अधिकार समझती हैं। वियोगावस्था में उन्हें अपने इस अधिकार छिन जाने का डर रहता है। यक्ष इस बात को अच्छी तरह जानता है। इसके परिणाम से भी वह अनभिज्ञ नहीं। यही

कारण है जो वह अपनी वियोग-कातरता का कारुणिक वर्णन कर रहा है। यही कारण है जो वह छोटी छोटी चीजो में भी अपनी पत्नी की सदृश्यता ढूढ रहा है। यही कारण है कि उत्तर-दिशा से आये हुए सुरभित पवन के स्पर्श को भी बहुत कुछ समझ रहा है। वह यह बतला रहा है कि दूर हो जाने से मेरे प्रेम में कमी नहीं हो गई; प्रत्युत वह पहले से भी अधिक प्रगाढ हो गया है। अतएव तू अपने मन में किसी प्रकार की अनुचित आशंका को स्थान न दे।

यक्ष के निःस्वार्थ और नित्यज प्रेम की सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती। वह अपने कुशल-समाचार भेज कर और अपनी विरह-व्याकुलता का वर्णन करके ही चुप नहीं रहा। उसे शंका हुई कि कहीं मेरी पत्नी इस सन्देश को बनावटी न समझे। प्रेमियों की दशा बडी ही विचित्र होती है। वे न कुछ को बहुत कुछ समझने लगते हैं और हवा में गाठें लगाना भी वे खूब ही जानते हैं। यक्ष की अजीब ही अवस्था है। उसे डर है कि कहीं ऐसा न हो कि इतना आश्वासन देने पर भी यक्षिणी इन बातो पर पूर्ण विश्वास न करे। अतएव इस संदेह का भञ्जन करना भी उसने आवश्यक समझा। इसी लिये उसे सन्देश मे यह कहना पड़ा—

"और कहूं सुनि एक दिना हियरा लगि मेरे तू सोई रही
आवत नींद न बेर भई जगि औचक रोय उठी तब ही।
पूछी जु मैं धन बारहिबार तो तैं मुसकाइ के ऐसे कहीं
देखति ही सपने छलिया तुमने एक सौत की बाह गही॥"

अब सन्देह करने का कोई कारण नहीं, यक्ष के जीवित होने का इससे अधिक विश्वसनीय समाचार और क्या हो सकता?

मेघदूत के यक्ष का प्रेम पत्नी-सम्बन्धी है। वह ऊंचे दरजे का है। वह निःस्वार्थ है—निर्दोष है। यक्ष अपने और पत्नी प्रेयसी के जीवन को अन्योन्याश्रित समझता है। यक्ष जिस तरह सन्देश भेज कर पत्नी की प्राण-रक्षा करना चाहता है उसी तरह, बहुत सम्भव है, उसकी पत्नी भी वियुक्त होने के कारण पति की प्राण-धारणा के विषय में सशंक रही होगी, प्रेम से जीवन पवित्र हो सकता है, प्रेम से जीवन को अलौकिक सौन्दर्य प्राप्त हो सकता है, प्रेम से जीवन

सार्थक हो सकता है। मनुष्य-प्रेम से ईश्वर-सम्बन्धी प्रेम की उत्पत्ति हो सकती है—इसके कितने ही उदाहरण इस देश में पाये जाते हैं। गोपियों के प्रेम को आप लौकिक न समझिए। वह सर्वथा अलौकिक था।

अन्यथा—

नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्त देहा।

ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते॥

उनके मुख से कभी न निकलता। अतएव प्रेम की महिमा अकथनीय है। जिसने उसे कुछ भी जाना है वह कालिदास के मेघदूत के रहस्य को भी जान सकेगा।

परन्तु, जो लोग उस रास्ते नहीं गये उनके मनोरंजन और आनन्दोत्पादन की भी सामग्री मेघदूत में है। उसमें आपको चित्रकूट के ऊपर बने हुए ऐसे कुंज देखने को मिलेंगे जिनमें वनचरों की स्त्रियां विहार किया करती हैं। पर्वतों के ऐसे दृश्य आप देखेंगे जिन्हें वर्षा ऋतु में केवल वही लोग देख सकते हैं जो पर्वतवासी हैं या जो विशेष करके इसी निमित्त पर्वतों पर जाते हैं। दशार्ण की केतकी कभी आपने देखी है? विदिशा की वेगवती की लहरों का भ्रु-भंग कभी आपने अवलोकन किया है? उस प्रान्त के उपवनों में चमेली की कलियों को चुनने वाली पुष्पावलियों से आपका कभी परिचय हुआ है? नहीं, तो आप मेघदूत पढ़िए। उज्जैन की यदि आप सैर करना चाहते हैं, उदयन का यदि आप कीर्तिगान सुनना चाहें, तो आप और कहीं न जाइए। आप सिर्फ मेघ[illegible] पढ़िए। प्राचीन दशपुर, प्राचीन ब्रह्मावर्त, प्राचीन कनखल, प्राचीन कैलास, प्राचीन अलका के दर्शन अब दुर्लभ हैं। तथापि उनकी छाया मेघदूत में है। पाठक! आपने इनको न देखा हो तो मेघदूत में देखिए।

अगस्त १९११।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

कालिदास का काव्य-वैभव और मेघदूत

सेठ कन्हैया लाल पोद्दार

संस्कृत साहित्य मे मेघदूत आबाल-वृद्ध प्रसिद्ध है। मेघदूत दो भागों में विभक्त है, पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। पूर्व मेघ मे अलकाधीश कुवेर ने अपने एक यक्ष द्वारा कुछ अपराध किये जाने पर उसे एक वर्ष तक के लिये अलका से निर्वासित कर दिया, तब वह यक्ष रामगिरि नामक पर्वत पर जाकर रहने लगा। कुछ समय बाद वर्षाकाल के प्रारम्भ में उसने वर्षाकालीन मेघमण्डल का कामोद्दीपक दृश्य देखा तो वह अपनी प्रियतमा के वियोग में और भी अत्यन्त विकल हो गया और उसने अपनी विरहिणी प्रिया के समीप सन्देश भेजना चाहा, किन्तु रामगिरि से हिमालयान्तर्गत अलका तक सन्देश भेजने का और कोई साधन न देख कर विरह-विधुर यक्ष विचार-शून्य होकर आकाशस्थित अचेतन (१) मेघ द्वारा ही सन्देश भेजने को उद्यत हो गया, और उससे इस कार्य के लिये प्रार्थना करने लगा। महाकवि कालिदास ने इस प्रकार मेघदूत का प्रारम्भ करके यक्ष द्वारा पूर्व मेघ की समाप्ति तक रामगिरि से अलका तक के वर्षाकालिक मार्ग का वर्णन कराने के पश्चात् नगाधिराज हिमालय के हिमवेष्ठित गगनचुम्बी उत्तुंग शिखरस्थ अलका के मनोहारी दृश्य का वर्णन कराया है। तदनन्तर उत्तर मेघ में कवि ने यक्ष द्वारा अलकापुरी के अलौकिक सौन्दर्य का, यक्ष के रमणीय निवासगृह और उसकी वियोगसन्तापिता पत्नी की विरहावस्था का वर्णन कराने के बाद अन्त में यक्ष द्वारा उसकी प्राणप्रिया को कहने के लिये सन्देश कहलाया है। बस इसी के अन्तर्गत कालिदास ने प्रावृट् कालीन मेघ मण्डल से प्रभावित होने वाले प्राकृतिक दृश्यों के नयनाभिराम विचित्र चित्र दृष्टिपथ कराये हैं, और पुराणेतिहासों में पर्वत, नदी और पवित्र स्थान जो भगवान श्री रामचन्द्र सीता देवाधिदेव शकर और कार्तिकेय आदि के सम्बन्ध से अद्यापि प्रसिद्ध हैं एवं हिमालय प्रान्त के जो विचित्र दृश्य हैं उनका यथावत् शब्द-चित्र अंकित कर

दिया है। विशेषत उज्जयिनी और अलका के मनोहर वर्णन द्वारा इस छोटे से खण्ड-काव्य की सुषमा में निरुपम अभिवृद्धि हो गई है। यक्ष पत्नी की विरहावस्था तथा यक्ष के सन्देश का विप्रलम्भ शृङ्गारात्मक कारुणिक वर्णन सहृदयों के चित्त को एक बार ही द्रवित कर देता है। सत्य तो यह है कि इस प्रकार कल्पना की आनन्दमयी सृष्टि में यथेष्ट विहार करने का अधिकार मेघदूत के जैसे कवि का ही हो सकता है।

कवीन्द्र कालिदास ने यौवन के उद्यान में क्रीडासक्त यक्ष दम्पति को नायक और नायिका कल्पित करके प्रधानतया उनके विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन किया है। विप्रलम्भ शृङ्गार के पाच भेद हैं—अभिलाषा-हेतुक, ईर्ष्याहेतुक, विरह-हेतुक, प्रवास-हेतुक और शाप-हेतुक। मेघदूत में शाप प्रवास-हेतुक विप्रलम्भ का वर्णन है। कविकुलगुरु कालिदास की अभिरुचि शाप-प्रवास-हेतुक विप्रलम्भ के वर्णन में अधिक देखी जाती है। शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय में भी उन्होने विशेषतया इसी का वर्णन किया है। दाम्पत्य स्नेह के उन्नत भाव-गर्भित विप्रलम्भ शृङ्गार के वर्णन में संस्कृत साहित्य के सिद्ध-हस्त दो ही कवि सर्वोच्च हैं, एक कालिदास और दूसरे भवभूति। भवभूति ने भी उत्तर रामचरित में विप्रलम्भ का चित्ताकर्षक सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। **मेघदूत और वाल्मीकीय रामायण**—साहित्यमर्मज्ञ विद्वानो से यह अविदित नहीं है कि महर्षि वाल्मीकि के सूक्ति सुधारस का निरन्तर आस्वादन करने वाले कालिदास ने प्रायः अपने सभी काव्य और नाटकों में न्यूनाधिक रूप में श्री रामायण का प्रतिविम्ब ग्रहण किया है। विशेषतया मेघदूत का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर तो यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि महर्षि वाल्मीकि द्वारा वर्णित भगवती जनकनन्दिनी की विरहवेदना से आकुलित भगवान श्री रामचन्द्र का सन्देश लेकर दक्षिणोदधि का उल्लघन करने के लिये गगन-मण्डल में सौदामिनी विलसित मेघ के समान गमन करते हुए पवनसुत हनुमान जी के प्रसग के काव्यामृत से आकृष्ट चित्त होकर ही कालिदास ने रूपान्तर से मेघदूत में वियोगी यक्ष की मानसीवृत्ति का वर्णन किया है। मेघदूत में प्रयुक्त—'जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु।' 'रामगिर्याश्रमेषु।' और 'रघुपतिपदैरङ्कितम्।' इत्यादि वाक्य खडों के द्वारा वाल्मीकीय रामायणोक्त कथा के साथ मेघदूत का सम्बन्ध प्रतीत होता हो, सो नहीं, किन्तु रामायणोक्त इस प्रसंग के

अनेक वर्णनों का सादृश्य मेघदूत में प्रत्यक्ष दृष्टिगत हो रहा है। कवि सार्वभौम महर्षि बाल्मीकि ने—

"अयं स काल• सम्प्राप्तः समयोद्य जलागमः, संपश्यत्वं नभो मेघैः सवृतं गिरिसंनिभैः।"—४।२८।२।

इत्यादि पद्यो मे मेघाछन्न गिरि शिखर के वर्षाकालीन दृश्य से परिवर्द्धित श्री रघुनाथ जी की विरहावस्था की वर्णना का आरम्भ किया है। मेघदूत मे भी— 'आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघ माश्लिष्टसानु।' (पूर्वमेघ २) इत्यादि पद्यो द्वारा तादृश वर्षाकालीन दृश्योत्पन्न यक्ष की वियोगावस्था का वर्णन आरम्भ किया गया है। रामायण में वानराधिपति सुग्रीव द्वारा वानरों के प्रति गन्तव्य मार्ग में आनेवाले स्थानो का वर्णन है, तदनुसार मेघदूत में यक्ष द्वारा मेघ के प्रति गन्तव्य मार्ग में आने वाले स्थानो का वर्णन किया गया है। रामायण में आकाश के वायु मार्ग में समुद्रोल्लंघन करते हुए हनुमान जी को सिद्धो द्वारा सपक्ष पर्वत की उपमा दी गई है—

"शुशुभे स महातेजा महाकायो महाकपिः, वायुमार्गे निरालम्बे पक्षवानिव पर्वत•" ५।१।७६।

मेघदूत में भी सिद्धांगनाओं द्वारा मेघ को पर्वत की उपमा दी गई है—

"अद्रेः शृंगं हरति पवन• किंस्विदित्युन्मुखीभि, दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धागनाभिः" पूर्व मेघ १४।

रामायण मे हनुमान जी की पुच्छ को इन्द्र-धनुष की उपमा दी गयी है। 'अम्बरे वायु पुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितम्।' (५।१।५९) मेघदूत में—'रत्नच्छायाव्यतिकर इव• ।' (पू० मे० १५) इत्यादि पद्य में इन्द्र-धनुष के सम्पर्क से मेघ का सुशोभित होना कहा गया है। रामायण मे आतिथ्य के लिये समुद्र द्वारा भेजे हुए मैनाक ने हनुमान जी से कहा है—अतिथि• किल पूजार्ह• प्राकृतोऽपि विजानता, धर्म जिज्ञासमानेन किं पुनर्यादृशो भवाम्। (वाल्मी० ५।१।११२) इसी भाव को कलिदास ने सर्वांश मे मेघदूत के निम्नलिखित पद्य मे रख दिया है—

'न क्षुद्रोऽपि प्रथम सुकृतापेक्षया संश्रयाय, प्राप्ते मित्रे भवति विमुखो किं पुनर्यस्तथोच्चैः।' पू० मे० १७।

रामायण में जल-भार वहन करने वाले मेघ का पर्वत शृङ्गों पर विश्राम ले लेकर जाना कहा है। मेघदूत में यह भाव नीचे के पद्य में इस प्रकार लिया गया है—

"उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासो, कालक्षेपं ककुभसुरभौ। पर्वते पर्वते ते।" पू० मे० २३।

रामायण में लङ्का को पृथ्वी पर गिरा हुआ स्वर्ग कहा गया है। 'महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णम्।' (५।७।६)। मेघदूत में उज्जयिनी को स्वर्ग का एक खण्ड कहा गया है—'शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्ड मेकम्', (पू० मे० ३१) इनके अतिरिक्त रामायण में वर्णित श्री जनक-नन्दिनी की विरहावस्था का तो कालिदास ने यक्ष पत्नी की वियोगावस्था के वर्णन में अधिकांश अनुकरण किया है। रामायण में जानकी जी को शुक्ल पक्ष की प्रतिप्रदा के चन्द्रमा की एक कला की उपमा दी गयी है (ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम्) ५।१५।१९। मेघदूत में भी यक्ष पत्नी को यही उपमा दी गई है—"प्राचीमूले तनुमिव कलामात्र शेषां हिमांशोः।" (उ० मे० २८)। रामायण में सीता जी को शीतकालीन शोभा विहीन कमलिनी की उपमा दी गयी है, मेघदूत में भी यक्ष पत्नी को यही उपमा दी गई है—"जाता मन्ये शिशिर मथिता पद्मिनी वान्यरूपाम्।" (उ० मे० २२)। रामायण में शुभ शकुन सूचक सीता जी के वामनेत्र के स्फुरण को मीन द्वारा सञ्चालित कमलपत्र की उपमा दी गयी है—

"प्रास्पन्दतैकंनयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवभिताम्रम्" (५।२९।२)। मेघदूत में इसके शब्द और अर्थ दोनो का अनुसरण है—

"त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दिशंके मृगाक्ष्या, मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्री तुलामेष्यतीति।" उ० मे० ३४।

इसी प्रकार उरुस्फुरण का भी रायायण के वर्णन का मेघदूत में अनुसरण है। यह तो दिग्दर्शनमात्र है। कालिदास ने मेघदूत के "इत्याख्याते पवन-तनयं मैथिलीवोन्मुखी सा।" (उ० मे० ३९) इस वाक्य में तो श्री जनक-नन्दिनी का स्पष्ट नामोल्लेख करके निर्व्याजल्प से स्पष्ट सूचित कर दिया है कि मेघदूत की रचना का आधार वाल्मीकीय रामायण ही है। किन्तु इसके द्वारा

यह समझना कि रामायण के वर्णनों का मेघदूत में अपहरण किया गया है, कविकुल दिवाकर कालिदास के साथ घोर अन्याय है। क्योंकि प्रथम तो मेघदूत की कल्पना ही रामायणान्तर्गत इस प्रसङ्ग के चित्ताकर्षक वर्णनो पर निर्भर है, तो उसका अनुकरण ही क्यों यत्रतत्र शब्द साम्य भी होना स्वाभाविक ही है। फिर यह भी ध्यान देने योग्य है कि बाल्मीकीय रामायण और महाभारत ऐसे महत्वपूर्ण आर्ष महाकाव्य हैं कि इनका अस्तित्व यदि न होता तो किसी भी काव्य या नाटक का भी अस्तित्व दृष्टिगोचर न होता। यही दोनों ग्रन्थ निर्विवाद रूप में संस्कृत साहित्य के पथ-प्रदर्शक हैं। साहित्य पथ-प्रदर्शको मे अग्रगण्य श्री मदानन्द वर्धनाचार्य के—

बाल्मीकिव्यतिरिक्तस्ययद्येकस्यापिकस्यचित्। इष्यते प्रतिभानन्त्य तत्तदानन्त्यमक्षतम" ध्वन्यालोक ४।७ की वृत्ति।

इस वाक्य से स्पष्ट है कि आदिकवि महर्षि बाल्मीकि का आदिकाव्य रामायण ही ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें किसी का अनुसरण नहीं किया गया है। अर्थात् तदिनर कवियो के काव्यों मे बाल्मीकीय का अनुसरण किये जाने पर भी वह अपहरण दोष नही कहा जा सकता, प्रत्युत कवि-प्रतिभा-जन्य काव्य-वैचित्र्य का आनन्त्य है। अतएव केवल कालिदास ही क्यो उनके पूर्ववर्ती महामहिम पाणिनि और महाकवि भास आदि एवं परवर्ती भारवि, माघ और भवभूति आदि अनेक महाकवियों ने इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर अपने काव्य-नाटको की रचना की है। किन्तु इस कार्य में सफलीभूत कविराट कालिदास ही हो सके हैं। यहां तक कि बाल्मीकीय में वर्णित पदार्थरत्नों को उन्होंने अपने प्रतिभा-कौशल से प्रसंगोचित स्थलो पर सुसज्जित करके और भी अधिक चमत्कृत कर दिया है।

कालिदास और अन्यान्य महाकवि

कालिदास की मनोरम अलंकार-गर्भित सूक्तियों पर मोहित होकर उनके परवर्ती प्राय: बहुत से महाकवियो ने उनके वर्णनों का अनुसरण करने के लोभ को संवरण नही करके अपनी रचना का गौरव बढाने की यथेष्ट चेष्टा की है। उदाहरण रूप में यहा केवल मेघदूत की सूक्तियो का अन्य कवियो द्वारा किये गये अनुकरण का दिग्दर्शन कराया जाता है। देखिये, मेघदूत के—

"गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्, बाह्योद्यानस्थित हरशिरश्च-न्द्रिकाधौतहर्म्या" (पू० मेघ०,)। इस पद्यार्थ में और—

"यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा, हंसश्रेणीरचितरशना नित्य पद्मा नलिन्यः। केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा, नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमो वृत्ति रम्याः प्रदोषाः।" उ० मे० ३।

इस पद्य मे अलका के बाह्योद्यान में निवास करने वाले भगवान चन्द्रशेखर के ललाट पर स्थित चन्द्रमा की कान्ति से अलका के महलो का सर्वदा (कृष्णपक्ष की रात्रियों में भी) श्वेत प्रभायुक्त रहना और वहा सर्वदा चाँदनी रात्रि का होना कहा गया है, इसी के अनुकरण पर महाकवि भारवि ने—

"स्नपितनवलतास्तरुप्रवालैरमृतलवस्नुतिशालिभिर्मयूखैः।
सततमसितयामिनीषुशम्भोरमलयतीह वनान्तमिन्दु लेखा॥"

किरातर्जुनीय ५।४४।

इस पद्य में कहा है—चन्द्रमा की किरणों से—ऐसी किरणो से जिनसे अमृत के विन्दु झरते रहते हैं, सिंचित रहने वाले लता और वृक्षो के पल्लवों के कारण हिमालय की वनभूमि सर्वदा (कृष्ण पक्ष की अंधेरी रात्रियों मे भी) शुभ्रकान्ति-मयी रहती है। और इसी के अनुकरण पर दार्शनिक महाकवि श्री हर्ष ने भी—

"सितदीप्रमणिप्रकल्पिते यदगारे हसदङ्करोदसि। निखिलान्निशि पूर्णिमा-तिथीनुपतस्थेऽतिथिरे किकाऽतिथीः।"—नैषधीय चरित २।७६।

इस पद्य में कुण्डिनपुर के श्वेतमणि-निर्मित भवनों के प्रकाश द्वारा वहां प्रतिपदा आदि सारी तिथियो की अतिथि रूप होकर सर्वदा एक पूर्णिमा तिथि की स्थिति रहना कहा है। किन्तु कालिदास ने पद्य के चतुर्थ पाद मे जो भाव बडी खूबी के साथ रख दिया है, तादृश रोचकता भारवि के पूरे पद्य-मे भी नहीं आ पाई है। श्री हर्ष की कल्पना तो केवल अत्युक्ति मात्र है—सहृदयाह्लादक नहीं मेघदूत के—

"रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्, वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुः-खण्डमाखण्डलस्य।
येन श्याम वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते, बर्हेणेवस्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः॥" पू० मे० १५।

इस वर्णन पर गीत गोविन्द के प्रणेता भक्तवर श्री जयदेव जी ने—

"चन्द्रकचारुमयूर शिखण्टकमण्डलवलयितकेशम्, प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरजिजतमेदुरमुदितसुवेषम् ॥"
—गीत गोविन्द।

इस प्रकार रचना की है। इसमें और मेघदूत के वर्णन मे भेद केवल यही है कि मेघदूत में मयूर पिच्छ का मुकुट धारण किये हुए भगवान गोपालकृष्ण की उपमा इन्द्र धनुष से सुशोभित मेघ को दी गई है, और गीत गोविन्द मे तादृश मेघ की उपमा तादृश भगवान् गोपालकृष्ण को दी गई है। मेघदूत के इस वर्णन का अनुकरण महाकवि माघ ने—

"अनुययौ विविधोपलकुण्डलद्यु तिवितानकसंवलितांशुकम्
धृतधनुर्वलयस्य पयोमुचः शवलिमा बलिमानमुषोवपु —
शिशुपाल वध ६।२७

इस प्रकार किया है। इसमें इन्द्र धनुष से सुशोभिन मेघ को भगवान् विष्णु के श्यामवर्ण की कान्ति की उपमा दी गई है—ऐसी कान्ति की जो अनेक रगो की मणियो के कुण्डल की प्रभाराशि से चमत्कृत हो रही थी। माघ का यह वर्णन भी वडा मनोहारी है। मेघदूत में उज्जयिनी के बाजार के—

हारांस्तांरांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शंखशुक्ती,
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्रहोरान्।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च—
भगान्संलक्ष्यन्ते सलिल निधयस्तोयमात्रावशेपा।"—पूर्व मेघ ३३।

इस वर्णन में कहा गया है—उज्जयिनी के बाजारो मे रखे हुए असंख्य मुक्ताहार, करोडों शंख-सीपियां, पन्नो की मणियां और प्रवालो के ढेर देख कर अनुमान होता है कि अब समुद्र मे केवल पानी मात्र ही शेष रह गया होगा, जब कि समुद्र से इतनी रत्न राशि वहां आ गई है। इस वर्णन का अनुकरण उज्जयिनी के वर्णन में ही महाकवि बाणभट ने इस प्रकार किया है—

"प्रकटशंखशुक्ति मुक्ता प्रवाल मरकन मणिराशिभिश्चामीकर चूर्णसिकता निकररचितैरायामभिरगस्त्यपरिपीतसलिलै सागरैखिमहाविपणियथैरुपशोभिना।'
— कादम्बरी।

इसका भावार्थ यह है कि शंख, सीपी और मोती आदि के ढेरों से एवं बिखरे हुए सुवर्ण के चूरे से उज्जयिनी के विस्तृत बाजारों की शोभा ऐसी दृष्टिगत होती है, मानों महामुनि अगस्त्य जी द्वारा सारा पानी पिया जाने पर समुद्र में शेष रह गये शंख, सीपी और रत्न ही दिखलाई पड़ते हों। मेघदूत के इसी वर्णन का अनुकरण महाकवि माघ ने इस प्रकार किया है—

"वणिक्पथे पूग कृतानि यत्र भ्रमागतैरम्बुभिरम्बुराशिः, लोलैरलोलद्युतिभाजि मुष्णन् रत्नानि रत्नाकरतामवाप।"—शिशुपाल वध ३।३८।

अर्थात् द्वारिका के बाजारों में रखे गये रत्नों के ढेर के ढेर जलमार्ग द्वारा वह कर समुद्र के तट पर आ जाने से द्वारिका के समुद्र का ही रत्नाकर (रत्नों का भंडार) नाम प्रत्यक्ष चरितार्थ होता है—अन्यत्र तो समुद्र में जल ही जल देखा जाता है, कहने मात्र को ही रत्नाकर है। महाकवि श्री हर्ष की भी कल्पना देखिये—

"वहु कम्बुमणिर्वराटिकागणनाटत्करकर्कटोत्करः। हिमवालुकयाच्छवालुकः पट्ट दध्वान यदापणार्णवः।"—नैषधीयचरित २।८८।

इसमें कुण्डिनपुर के बाजार को समुद्र रूप वर्णन किया गया है। समुद्र में शंख और मोती आदि रत्न होते हैं। कुण्डिनपुर के बाजार में भी शंख आदि के ढेर लगे हुए हैं। समुद्र में कुलीर नाम के जल-जन्तु फिरते रहते हैं, उसमें भी कौड़ियों को गिनने के लिये चलायमान हाथ ही कुलीर रूप हैं। समुद्र में बालू रेती होती है, उसमें भी अत्यधिक कर्पूर का चूर्ण बिखरा रहता है।

सत्य तो यह है कि सारे रत्न-समूह उज्जयिनी के बाजारों में आ जाने के कारण समुद्र में पानीमात्र शेष रह जाने के वर्णन में जो कालिदास की उपयुक्त कल्पना है वैसी उज्जयिनी के बाजारों में बाणभट द्वारा की गयी जल-रहित समुद्र की उत्प्रेक्षा में नहीं, और श्री हर्ष की कल्पना तो केवल अत्युक्तिमात्र है। माघ की कल्पना अवश्य अधिकांश में कालिदास के वर्णन के समकक्ष प्रतीत होती है। और देखिये—

"तस्यादातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी, त्वं चेदच्छस्फटिक विशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः। संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसिच्छाययाऽसौ, स्यादस्थानोपगतयमुनासंगमेवाभिरामा"—पूर्व मेघ ५४।

मेघदूत के इस पद्य में श्री गंगा का जल लेने के लिये आकाश पर से नीचे को झुके हुए श्यामवर्ण के मेघ के दृश्य का बड़ा ही चित्ताकर्षक वर्णन है—यक्ष कहता है, हे मेघ, श्री गंगा के स्फटिक के समान शुभ्र और स्वच्छ जल पीने को जब तू इन्द्र के ऐरावन हस्ती के सदृश महत्काय श्याम वर्णवाला—आकाश में पिछले आधे भाग को ऊंचा किये और आगे के आधे भाग से तिरछा होकर नीचे झुकेगा, तब प्रवाह में गिरी हुई तेरी छाया से भगवती गंगा ऐसी सुशोभित होंगी मानो प्रयाग से अन्यत्र ही यमुना का नयनाभिराम संगम हो गया हो। कालिदास की श्री गंगा-यमुना के संगम के दृश्य की इस कल्पना ने महा कवियो के चित्त को बहुत आकर्षित किया है। माघ ने इस सूक्ति पर मुग्ध होकर रैवतक गिरि की तलहटी में बहने वाली एक नदी का—

"एकत्रस्फटिकतटांशुभिन्नतीरा नीलाश्मद्युतिभिदुराम्भसोऽपरत्र।
कालिन्दी जलजनितश्रियः श्रयन्ते वैदग्धीमिह सरितः सुरापगायाः।"
—शिशुपाल वध ४।२६।

इस प्रकार वर्णन किया है कि एक ओर स्फटिक मणि के तट की श्वेत कान्ति के प्रतिबम्ब से शुभ्र और दूसरी ओर नीले पाषाणों के तट की छाया से नील प्रतीत होने वाले प्रवाह वाली यह नदी, कलिन्दनन्दिनी यमुना की शोभा से मिली हुई भगवती गंगा की छबि धारण कर रही है। इस दृश्य का महाकवि मखूक ने भी अनुकरण किया है—

"यस्या सकृत्प्रणमतो धृतमन्तुतन्तुर्नम्राननां गिरि सुता श्रुभिरञ्जनांकः।
मौलौ नव लिखति शीतरुचे: कलंकम्, पुष्णात्यकाण्डयमुनाप्रणयांच गंगाम्॥
श्रीकंठचरित ५।३९।

अर्थात मानवती श्री पार्वती जी को बारम्बार प्रणाम करते हुए श्री शङ्कर के ललाट स्थित चन्द्रमा के ऊपर नम्रमुखी श्री गिरिजा के अञ्जन मिश्रित अश्रु गिरते हैं, वे मानो चन्द्रमा के एक नवीन कलंक का उल्लेख कर रहे हैं और प्रयाग से अन्यत्र ही गंगा से यमुना का सङ्गम करा रहे हैं। इस वर्णन में उत्प्रेक्षा की कल्पना विचित्र अवश्य है किन्तु साथ ही उपमेय-उपमान का परिमाण काव्य मर्मज्ञो की दृष्टि में कुछ खटकता भी है।

यह केवल मेघदूत की सूक्तियो के अनुकरण का दिग्दर्शनमात्र है। इनके

अतिरिक्त कालिदास के और भी अनेक वर्णनों का अश्वघोष, दण्डी, भवभूति, शूद्रक और अमरुक आदि अनेक बड़े बड़े महाकवियो ने अनुकरण किया है।

मेघदूत के अनुकरण पर अन्य दूत काव्य और टीकाएं

मेघदूत के अनुकरण पर बहुत से दूत काव्यों की रचना भी संस्कृत साहित्य मे अनेक प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा की गयी है। उपलब्ध दूत काव्यो मे सबसे प्रथम जिन सेनाचार्य ने (शक ७०४) पार्श्वाभ्युदय लिखा है, तदनन्तर भोजराज ने चकोरदूत, विक्रम कवि ने नेमिदूत, वेदान्तदेशिक वेंकटाचार्य ने हंस-सन्देश, उदण्डशास्त्रीने कोकिल सन्देश, लक्ष्मीदास ने शुक सन्देश, धोइक ने पवनदूत, वादिचन्द्र ने पवनदूत विनयविजयगुणीने इन्दुदूत, तैलग व्रजनाथ ने मनोदूत, कृष्णसार्वभौम ने पदांगदूत, माधव कवीन्द्र ने उद्धवदूत, श्री रूप गोस्वामी ने हंसदूत, भगवद्दत्त ने मनोदूत और लक्ष्मीनारायण ने रथागदूत इत्यादि लिखे हैं। मेघदूत पर अनेक विद्वानों ने असख्य टीकायें भी लिखी हैं। निष्कर्ष यह है कि उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण मे मद्रास तक और पश्चिम में महाराष्ट्र से बंगाल तक सभी प्रान्तो के सुप्रसिद्ध विद्वानों ने कालिदास और उनके काव्यो पर बहुत कुछ लिखा है। केवल एतद्देशीय ही नहीं, द्वीपान्तरीय विद्वानो द्वारा पाश्चात्य भाषाओ मे भी मेघदूत के कई अनुवाद और व्याख्यायें लिखी गयी हैं। विलसन साहिब ने ई० सन् १८१३ में अग्रेजी मे अनुवाद और व्याख्या लिखी है, गिल्डमीस्टर ने सन् १८४७ मे बोन मे लैटिन भाषा के कोष के साथ एक आवृत्ति निकाली थी। प्रोफेसर मोक्षमूलर ने भी ईस्वी सन् १८४७ मे एक आवृत्ति निकाली थी। अन्य पाश्चात्यों ने भी कई आवृत्तियां निकाली हैं। हमारी हिन्दी भाषा में भी मेघदूत के अनेक अनुवाद हो चुके हैं। जिनमें स्वर्गीय राजा लक्ष्मण सिंह का व्रजभाषानुवाद कालक्रम मे नहीं, काव्यमाधुरी की सरसता में भी सर्वप्रथम है। इन पंक्तियो के लेखक ने भी मेघदूत का समश्लोकी अनुवाद, हिन्दी मेघदूत विमर्श लिखने का दुःसाहस किया है। बस उपसंहार में कालिदास के काव्य मर्मज्ञ भाष्यकार श्री मल्लिनाथ का निम्नलिखित पद्य लिख कर यह लेख समाप्त किया जाता है—

कालिदासगिरां सारं कालिदास सरस्वती, चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद्विदुर्नान्ये तु मादृशाः॥

मेघदूत— प्रसार तथा प्रभाव

आचार्य बलदेव उपाध्याय

मेघदूत संस्कृत साहित्य का वह जाज्वल्यमान हीरक है जिसकी प्रभा समय के प्रवाह से और भी अधिक बढतो जाती है। वह बडी ही मंगलमयी घड़ी थी जब महाकवि कालिदास ने इस अमर काव्य की रचना की थी। वाह्य प्रकृति की मनोरम झांकी प्रस्तुत करने में तथा अन्तस्तल में सन्तत उदय होने वाले भावों के चित्रण में यह काव्य अपनी तुलना नहीं रखता। किसी विरह विधुरा प्रेयसी के पास मेघ को प्रेम का सन्देशवाहक दूत बनाकर भेजनेकी कल्पना ही विश्व के साहित्य में अपूर्व कोमल तथा हृदयावर्जक है। बाल्मीकीय रामायण में अशोक बाटिका में रावण के द्वारा अपहृत जनकनन्दिनी के पास हनुमान को भेजना तथा महाभारत में हंस के द्वारा दमयन्ती के ह्रदय में राजा नल के प्रति प्रणयभाव के प्रादुर्भाव की कथा अवश्यमेव कालिदास से प्राचीनतर है। परन्तु इनमें चेतन पदार्थों से ही दौत्य-कार्य की सम्पति दीख पड़ती है। किसी अचेतन वस्तु को प्रेम प्रसङ्ग में दौत्य कर्म के लिये भेजना तथा प्रणय में गाढ उत्कण्ठातिरेक की सद्यः अभिव्यक्ति करना सचमुच एक प्रतिभासम्पन्न कवि की मौलिक कल्पना है। ऐसे प्रसङ्ग की गूढ अभिव्यञ्जना की ओर लक्ष्य न करके संस्कृत के आद्य आलङ्कारिक भामह ने इसे 'अयुक्तिमत्' दोष के नाम से अभिहित किया है। उनका तर्क है कि मेघ, शुक, चन्द्र आदि पदार्थों को दूत बना कर भेजना इसलिये युक्तिरहित है कि इनमें से कुछ पदार्थों की वाक्शक्ति ही नहीं है (अवाचः), कुछ की वाणी नितान्त अव्यक्त है जिससे वे अपने सन्देश को दूसरों से स्पष्टतया प्रकट नहीं कर सकते (अव्यक्तवाचः) तथा कुछ दूर देशों में विचरण करने वाले हैं (दूर देश विचारिण.)। फलत. इन्हें दूत बना कर भेजना युक्ति विहीन नहीं तो क्या है?

अवाचोऽव्यक्तवाचश्च दूर देश विचारिणः।
कथं दूत्यं प्रपद्येरन्निति युक्त्या न युज्यते ॥ काव्यालङ्कार १।४२।

इस प्रकार की विपरीत आलोचना का खण्डन कालिदास ने बड़ी भावुकता के साथ पहले ही कर दिया है—कामार्ता ही प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। काम से पीड़ित प्राणी चेतन तथा अचेतन के झमेले में नहीं पड़ता। वह तो उत्सुकता तथा उत्कण्ठा का शिकार बना रहता है। परन्तु फिर भी मेघ के दूत बनाने में सुन्दर युक्ति की सत्ता है। मेघ तो सूखते हुए पौधों को जल से सींच कर झरने से बचाता है और यहा तो एक जीता प्राणी विरह के मारे अधमरा बना हुआ सिसक रहा है और वह भी किसी धन कुबेर के क्रोध का भाजन हुआ प्रेयसी से वियुक्त होकर जीवन-यापन कर रहा है (धनपति क्रोधविश्लेषितस्य)। फलत वह विशेष रूप से मेघ की दया का पात्र है—अनुकम्पा का भाजन है। कालिदास के इस समर्थन की ओर भामह ने स्वयं अपना सिर झुकाया है और 'सुमेधा' के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इस कल्पना को ग्राह्य तथा अनुकरणीय माना है—

यदि चोत्कण्ठया यत्तद् उन्मत्त इव भाषते।
तथा भवतु भूम्नेदं सुमेधोभि प्रयुज्यते॥ (भामह १।४४)

नई-नई शताब्दियों में प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्रदान करना काव्य की महत्ता का स्पष्ट सूचक होता है और इस कसौटी पर कसने से 'मेघदूत' को संस्कृत साहित्य में एक नवीन काव्य प्रकार की उद्भावना का श्रेय प्राप्त है जो 'सन्देश काव्य' के नाम से प्रख्यात है। सर्वप्रथम महाकवि भवभूति ने अपने 'मालती माधव' में माधव के द्वारा मालती के समीप मेघ को दूत बना कर भेजने की कल्पना का अनुसरण किया है। यहा (९ अङ्क, २५-२६ श्लोक) दोनो पद्य 'मन्दाक्रान्ता' वृत्त में ही उपन्यस्त है।१ भवभूति के बाद एक शताब्दी के भीतर ही हम जैन कवियों को मेघदूत के प्रति विशेषत आकृष्ट होते पाते है। उन्हें यह काव्य इतना रुचिकर प्रतीत हुआ कि उन्होंने इसके समस्त पद्यों की समस्यापूर्ति

१—कच्चित सौम्य प्रियसहचर विधुरालिङ्गति त्वामाविर्भूत प्रणयसुमुखास्चातका वा भजन्ते। पौरस्त्यो वा सुखयति मरुत् साधु संवाहनाभिर्विभ्रत् विभ्रत् गुरुपनिधनुर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति॥

कर नवीन काव्यों की रचना की है। इनमें से कई कवियो ने मेघदूत के अन्तिम चरणों को ही समस्या रूप से ग्रहण कर उसकी पूर्ति अपनी ओर से की है, परन्तु आचार्य जिनसेन का कार्य इस दृष्टि से नितान्त श्लाघ्य है जिन्होने मेघदूत के समस्त पद्यो के समग्र चरणो की ही पूर्ति अपने 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य मे बड़ी सफलता तथा रुचिरता के साथ की है। पार्श्वाभ्युदय मे श्री जिनसेन ने ३६४ मन्दाक्रान्ता वृत्तो मे पार्श्वनाथ का जीवन चरित बड़े ही कौशल के साथ गुम्फित किया है। इसके प्रत्येक पद्य मे मेघदूत के एक या दो चरण वेष्टितकर श्रृङ्गार रसात्मक काव्य शान्तरस के रूप मे परिणित किया गया है। समस्या पूर्ति होने पर इसमे मौलिकता की कमी नहीं है और कालिदास के मेघदूत के संकेत करने मे यह ऐतिहासिक महत्व रखता है। प्रो० पाठक (?) ने इसी के आधार पर मेघदूत का एक सुन्दर सरकरण प्रकाशित किया है। जिनसेन का समय नवी सदी है। फलतः यह अपने विषय का आदिम तथा प्रचीन ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की शैली से स्फूर्ति ग्रहण कर विशेषन. जैन कवियो ने अनेक काव्यों का निर्माण किया जिसमे मुख्य हैं—

(१) विक्रम कवि रचित नेमिदूत[१] जिसमे बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ तथा राजीमना का चरित्र मेघदूत के अन्त्यचरण के पादपूर्ति रूप मे १२६ श्लोको में सुन्दरता के साथ वर्णित है ये साङ्गण के पुत्र थे तथा विक्रम की १५ वीं सदी मे इनका आविर्भाव हुआ था।

(२) शीलदूत—बृहत्तपागच्छीय चारित्र सुन्दर गणिके द्वारा खम्भात मे सं० १४८४ में रचित हुआ जिसके १२५ श्लोको मे मेघदूत के अन्त्य चरणों की समस्या पूर्ति की गई है। यशोविजय ग्रन्थमाला में प्रकाशित।

(३) चन्द्रदूत—खरतरगच्छीय कवि विमल कीर्ति की १६८१ विक्रमी की रचना है। कवि ने इसमें १४१ श्लोकों में चन्द्र को शत्रुञ्जय जाकर ऋषभदेव की बन्दना के निमित्त भेजा है। अगरचन्द नाहटा[२] के सग्रहमें हस्तलिखित प्रति है।

---

१ जैन प्रेस कोटा (राजस्थान) से गुणविनय की संस्कृत टीका तथा हिन्दी पद्यानुवाद के साथ प्रकाशित, सं० २००५।

२ अगरचन्द नाहटा की श्री नेमिदूत की प्रस्तावना ६२१-२३।

(४) मेघदूत समस्या लेख—उपाध्याय मेघविजय की १३० श्लोकों में रचना है जिसमें कवि ने मेघ के द्वारा गच्छाधिपति विजयप्रभुसूरि के पास विज्ञप्ति भेजी है। रचनाकाल १७२७ विक्रमी।

(५) चेतोदूत—किसी अज्ञात जैनाचार्य की रचना जिसमें चित्त को दूत बना कर गुरु के पास विज्ञप्तिप्रेषण किया है। पद्य संख्या १२९। यह नया ग्रन्थ (४) आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित है। इनके अतिरिक्त हंस पादाङ्कदूत का भी संकेत मिलता है।

जैनेतर कवियों की दो पादपूर्तियाँ हैं—सिद्धदूत अवधूतराम योगी की १८७३ वि० रचना है जिसमें कैलासस्थ ब्रह्मविद्या के पास छाया पुरुषको दूत बना कर भेजा गया है। श्लोक सख्या १३८। श्री हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली पाटन से १९२७ मे प्रकाशित।

हनुमत्दूत—जोधपुर के आधुनिक कवि नित्यानन्द शास्त्री द्वारा रचित तथा वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित।

सन्देश काव्य के अन्तर्गत मेघदूत का प्रथम अनुकरण है धोयी कवि का पवनदूत। यह कवि महाकवि गीत गोविन्दकार जयदेव का समकालीन तथा राजा लक्ष्मणसेन के प्रति किसी दाक्षिणात्यरमणी की विरह व्यथा का रोचक वर्णन है। इसके अनन्तर तो बगाल तथा द्रविड देशके कवियोंने सन्देश काव्योके लिखने मे बडा उत्साह दिखलाया। अपभ्रंश साहित्य भी कालिदास की इस मौलिक सूझ का उपासक था, इसका पता हाल मे ही हमे चला है। १२ शती के अब्दुल रहमान नामक एक मुसलमान कवि ने 'सन्देश रासक' नामक एक सुन्दर सन्देश काव्य अपभ्रंश भाषा मे लिखा है जो भाषा तथा भाव दोनों दृष्टियों से रोचक तथा मनोरंजक है। वैष्णव कवियों के हाथों सन्देश काव्य में बडी कोमलता तथा भावुकता का उदय हुआ क्योंकि उन्होने इसे राधा तथा कृष्ण की ललित लीलाओं तथा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना का माध्यम बनाया। रूप गोस्वामी (१६ शती) का 'उद्धवदूत' ऐसी ही भव्य रचना है जिसमे उद्धवजी को भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों को समझाने तथा उनके दिव्य प्रेम को परखने के लिये भेजा था। गोपियों का यह उपालम्भ कितना मार्मिक, हृदयस्पर्शी तथा मंजुल है।

या पूर्वं हरिणा प्रयाण समये संरोपिताऽऽशालना,
साऽमृत् पल्लविना चिरात् कुसुमिता नेत्राम्बुसेकैं सदा।
विज्ञातं फलितेति हन्त ! भवता तन्मूलमुन्मूलितं
रे रे माधवदूत ! जीव विहगः क्षीणः किमालम्बते ॥

ऐसे संदेश काव्यो की संख्या चालीस-पैंतालीस से कम नहीं है।१ दुख इतना ही है कि इनमें से अनेको का समय अज्ञात है : ऐसे काव्यों में से कतिपय के नाम ये हैं—कृष्णभट्ट सार्वभौम का पादांकदूत (रचना काल १७२३ ई.), लक्ष्मीदास का शुक सन्देश, विष्णुदास का मनोदूत तथा व्रजनाथ का भी मनोदूत है। इस प्रकार का सबसे अन्तिम रुचिकर निदर्शन है—

सन्देश रासक

कालिदास के मेघदूत का प्रभाव एक साथ ही संस्कृत तथा प्राकृत भाषा के कवियो के ऊपर पडा। संस्कृत कवियो की सामान्य चर्चा ऊपर की गयी है जिनके ऊपर मेघदूत का प्रभाव व्यक्त रूप से पडा। बारहवी शताब्दी में इसका प्रभाव अपभ्रंश भाषा के एक कवि और वह भी मुसलान—के ऊपर विशेष रूप से पडा जिसका परिणित फल है—**संदेश रासक** नामक अपूर्व अपभ्रंश काव्य। कवि का नाम है अब्दुल रहमान जो जात्या मुसलमान जोलाहा था। वह अपने पिता का नाम मीरसेन 'आरद्द' (तन्तुवाय) बतलाता है जो पश्चिम मे प्रसिद्ध म्लेच्छ वंश में उत्पन्न हुआ था। वह मूलस्थान (मुल्तान) का निवासी

१—इनके परिचय के लिये देखिये चिन्ताहरण चक्रवर्ती का लेख इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली भाग ४ कलकत्ता। इनमें से अनेक दूत काव्यो को डा० चौधुरी ने कलकत्ते से प्रकाशित किया है।

महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा का मुग्दरदूत (पटना से प्रकाशित) जिसमें आजकल के चलते-फिरते तथा धार्मिक जनता को ठगने वाले साधु सन्तों के प्रतीक रूप श्री स्वामी मुग्दरानन्द सरस्वती का दिव्य चरित्र हास्यरस का आलम्बन कर बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया गया है।



था जो अपनी व्यापारिक समृद्धि तथा कला-कौशल के कारण हिन्दुस्तान के नगरों में अग्रगण्य था। सदेश रासक कालिदास के सन्देश काव्य से स्फूर्ति ग्रहण करता है। कवि ने आरम्भ मे अपनी बडी नम्रता दिखलाई है। कथावस्तु बहुत थोडी है। मरुस्थली के विजय नगर में बैठी कोई प्रेयसि पति का अपने प्रवास गत पति की विरह वेदना से नितान्त सन्तप्त है और अपने जीवन को पति के दुःखद चिन्तन मे बिता रही है। इसी समय कोई पथिक मुलतान के किसी समृद्ध मालिका का आदेश पाकर तथा सन्देश वाहक बन कर स्तम्भ तीर्थ (खभात) जा रहा है। उसका पति भी वहीं वाणिज्य व्यवसाय करता है और इसलिए वह उसी पथिक के द्वारा अपना सन्देश भेजती है और इसी सन्देश का वर्णन इस काव्य का मुख्य विषय है। कथा की समाप्ति बड़े रोचक ढग से होती है। अपना संदेश कहने के बाद वह ज्यो ही पथिक को विदा करके अपने घर की ओर तेजी से जाती है, त्यो ही दक्षिण से कदम बढाता हुआ उसका पति दृष्टिगोचर होता है और इस अप्रत्याशित मिलन से वह आश्चर्य और आनन्द से विह्वल हो उठती है।

अब्दुल रहमान ने सच्चा कवि-हृदय पाया है। वह नम्रता तथा विनय की मूर्ति है। वह अपनी काव्य-प्रतिभा को बडी ही हीन समझता है, परन्तु है वह वास्तव मे प्रतिभाशाली कवि। उसकी कविता बडी चमत्कारिणी तथा हृदय रञ्जिका है। रमणी की सुन्दरता देख कर पथिक के मन मे विस्मय होता है—

किंतु पयावइ अथलउ अहवि वियडढलु अहि
जिमि सरिसि तिय निम्मविय ठविय न अप्पहि पाहि

प्रजापति या तो अन्धा है अथवा वह एकदम नपुसक है जिसने ऐसी स्त्री का निर्माण कर उसे अपने पास नहीं रखा।

विरहाग्नि की वृद्धि के विषय में कवि की यह उत्प्रेक्षा कितनी सुहावनी है। नायिका कहती है—मेरा अनुमान है कि विरह की आग वडवानल से उत्पन्न होती है। यदि ऐसा नहीं होता तो, वह आसुओ से सींचने पर झटपट कैसे जल उठती—

पाइय पिय बड़वानलहु विरहग्गिहि उप्पत्ति।
जे सित्तउ घोरं सुपहि जलइ पडिल्लि झत्ति ॥

इस प्रकार अब्दुल रहमानका यह सन्देश[1] काव्य मेघदूत के विपुल प्रभाव का परिचायक माना जा सकता है।

भारतेतर देशों में मेघदूत के प्रचार की कहानी बडी मनोरञ्जक है। मेघदूत का तिब्बती अनुवाद तेरहवीं शताब्दी मे किया गया था जो तंजूर मे विद्यमान है। इश तिब्बती अनुवाद का परिचय हमें जर्मन विद्वान डाक्टर बेख (Dr. Beckt) द्वारा १९०६ में किये गये जर्मन अनुवाद से मिलता है। यूरोप की समस्त मान्य भाषाओं में मेघदूत का सुन्दर अनुवाद किया गया मिलता है—अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेञ्च, रशियन आदि मे। सबसे विलक्षण बात यह है कि १८ वीं शती के अन्त मे मेघदूत का अनुवाद जर्मन भाषा में जब किया गया तब प्रसिद्ध जर्मन कवि शिलर (Schiller) को यह कल्पना इतनी पसन्द आई कि उन्होंने मेरिया स्टुअर्ट नामक काव्य में इसकी अवतारणा बड़े साहित्यिक ढंग से की। मेरिआ अस्टु-अर्ट कैदखाने में कैद है वह खिडकी से आकाश मे स्काटलैंड की ओर उडते मेघो को देखती है। तथा उनसे प्रार्थना करती है कि वह उसके देशवासियों से जाकर उसकी दयनीय दशा का परिचय दें। जिस प्रकार गेटे शाकुन्तल के महनीय प्रशंसक थे उसी प्रकार उनके मित्र शिलर मेघदूत के। प्रशंसक ही नहीं, सफल अनुकर्ता भी! इस प्रकार मेघदूत की काव्य कल्पना जर्मन साहित्य के एक महनीय कवि की रचना मे स्वीकृत हो चुकी है।

मेघदूत का सिहली अनुवाद भी काफी पुराना है। लङ्का के किसी टी. बी. पानबोरे नामक विद्वान ने १८८३ ई. में कोलम्बो से मेघदूत का सिघली अनुवाद भी प्रकाशित किया है। चीन के एक कवि ने पञ्चम शती मे मेघको इसी प्रकार दूत बना कर भेजा है परन्तु वह कालिदास के काव्य से परिचित नहीं

---

१ सिंघी जैन ग्रन्थमाला मे मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित तथा भायानी द्वारा पाण्डियपूर्ण तथा उपयोगी भूमिका के साथ संकलित। बम्बई से प्रकाशित, संवत् २००१।

प्रतीत होता। पक्षियों को सन्देश वाहक बनानेकी घटना बड़ी प्राचीन है। काम विलाप जातक २९७ में बड़ी विपत्ति मे पड़ा हुआ एक मनुष्य अपनी स्त्री के पास कौवे के द्वारा अपना सन्देश भेजता है। परन्तु कालिदास की यह कल्पना मौलिक है, इसमें सन्देह नहीं। भारतीय भाषाओं मे मेघदूत के अनुवाद मे कमी नहीं। एक-एक भाषा में अनेक अनुवाद वर्तमान है। हमारी हिन्दी मे ही अनेक अनुवाद हैं तथा आज भी नये-नये प्रकाशित हो रहे हैं।

इसका भी कारण है। इस नवीन युग मे भी मेघदूत से स्फूर्ति का स्रोत प्रवाहित हो रहा है। कालिदास प्राचीन पन्थी कवि न होकर प्रगतिशील कवि माने जाते हैं। उचित ही है। मेघदूत किसी धनी-मानी वदान्य नरपति की विरह वेदना का वर्णन नहीं है, अपितु समृद्धराजराज कुबेर के क्रोध भाजन बने एक दीन हीन मलिन यक्ष के व्यथित हृदय का करुण क्रन्दन है जो अपने मालिक की निर्दय आज्ञा को पीकर अपनी प्रेयसी से दूर जंगलो की खाक छानता फिरता है। तथा कुश-कण्टकों में अपना दिन बिताता है। सच्चा कवि देश तथा काल की परिधि से कभी बाँधा नहीं जाता। कालिदास भी ऐसे ही विश्व कवि हैं। कालिदास के प्रकृत-चित्रण की विशेषता तथा मेघदूत के आध्यात्मिक सन्देश का वर्णन अन्यत्र किया जायगा।

मै वर्गीय हिन्दी परिषद् के कार्यकर्ताओं को बधाई देता हू जिन्होंने ब्रजभाषा के इन मान्य कवियों के सरस अनुवाद को एक साथ प्रकाशित कर रसिकों का आनन्दवर्द्धन किया है। काव्य मर्मज्ञो को इन अनुवादो में विशेष आनन्द प्राप्त होगा। कालिदास की वाणी की यही महिमा है:—

अस्पृष्टदोषा नलिनीव दृष्टा, हारावलीवग्रथिता गुणौघैः।
प्रियाङ्क पालीवविमर्दहृद्या, न कालिदासापरस्य वाणी॥

महाशिवरात्रि, २०१२ सम्वत्

बलदेव उपाध्याय

—·—

प्रथम भूमिका

उपमा अलंकार में कालिदास से बढकर अब तक कोई कवि भारतवर्ष में नहीं हुआ और उनके ग्रन्थो में मेघदूत भी इसी अलकार की उत्कृष्टता के कारण सराहने योग्य गिना जाता है। इस छोटे से काव्य को पढ कर पढने वाले के चित्त पर अक-सा हो जाता है कि विधाता ने कालिदास को कितनी बडी कल्पनाशक्ति दी थी। मनुष्य की प्रकृति जानने और स्थान का वर्णन करने और स्वभाव का लालित्य दिखाने में यह कवि एक ही हुआ है। मेघदूत का अवलोकन करने से ये उत्तम गुण कालिदास के भली भांति दीखते हैं। उनके वाग्विलास की बडाई जितनी की जाय थोडी है। इस काव्य का प्रकरण संक्षेप में यह है कि कोई यक्ष अपने काम में असावधान हो गया। तब उसके स्वामी कुबेर ने कोप कर उसे बरस दिन के लिये देश निकाला दिया। इस शाप के वश वह अलकापुरी को छोड दक्षिण में रामगिरि पर्वत पर अकेला जा रहा। जब उस पहाड में रहते कुछ दिन बीत गये और असाढ़ का बादल उमडा, उस विरही को अपनी स्त्री की बहुत सुधि आई, उसने मन में सोचा कि प्यारी के पास कुछ कुशल का सन्देसा भेजना चाहिये। बादल के सामने खड़ा हुआ इसी सोच-विचार मे था कि प्रेम की अधिकता मे विह्वल हो गया, बादल ही को दूत बना कर अलका-पुरी का मार्ग बताने और अपना संदेसा सुनाने लगा। रामगिरिसे अलका तक जो-जो नदी और पहाड और तीर्थ और मुख्य-मुख्य नगर और देश हैं उनका थोडा-थोडा पता देता गया है। पहले ६५ श्लोकोंमें अलका तक पहुँचाया है इसीका नाम 'पूर्व मेघ' है, फिर 'उत्तर मेघ' के ५१ श्लोकों मे अलकापुरी की शोभा और यक्षिणी की दशा वर्णन करके अपना संदेसा बतलाया है। निदान जब बादल से कहे हुए सदेसे का वृत्तान्त कुबेरे के कान तक पहुचा उसने दयालु होकर यक्ष का अपराध क्षमा किया और स्त्री-पुरुष का संयोग बरस दिन बीतने से पहले ही करा दिया।

हमने हिन्दी छन्दों में यह उल्था अभी पूर्व मेघ का किया है, परन्तु

विचार है कि यदि अवकाश मिला तो उत्तर का भी करेंगे। एक भाषा के छन्द को दूसरी भाषा के छन्द में उल्था करना कुछ तो आप ही कठिन होता है तिस पर हमारा नियम है कि मूल से उल्था न्यूनाधिक न हो और भाव में भी कुछ विरोध न आवे। इसी से कठिनाई अधिक दीखती है। फिर भी हम आशा करते हैं कि हमारे इस तुच्छ आरम्भ को देख कर कोई हिन्दी भाषा की अल्पता का दोष न देगा किन्तु विदित होगा कि यह भाषा बड़े विस्तार की है।

इति शुभम् — २८ जून १८८२ ई०

दूसरी भूमिका

सन् १८८२ ई० में मेघदूत के पूर्वार्द्ध का अनुवाद हिन्दी-भाषा के छन्दों में करके मैंने प्रतिज्ञा की थी कि यदि अवकाश मिला तो उत्तरार्द्ध का अनुवाद भी इसी भांति करके प्रकाशित कराऊँगा। दैवकृपा से वह प्रतिज्ञा पूरी हुई। अब दोनों भाग इकट्ठे छापे जाते हैं।

२८ फरवरी १८८८ ई०

तीसरी भूमिका

जितनी आशा थी उससे अधिक माग इस ग्रन्थ की हुई इससे जाना गया कि हिन्दी के रसिकों में इसने पूरा आदर पाया। पहले जो कुछ दोष रह गए थे अब तीसरी बार के छापे में दूर कर दिये गए हैं।

आगरा, २२ जुलाई १८९३ ई० — —लक्ष्मण सिंह

निवेदन

राजा लक्ष्मण सिंह का जन्म ९ अक्टूबर सन् १८२६ को आगरे में हुआ था। पांच वर्ष की अवस्था में इनका विद्यारम्भ कराया गया और ८ वर्ष तक ये घर पर संस्कृत, हिन्दी और फारसी पढ़ते रहे। यज्ञोपवीत संस्कार हो चुकने पर १३ वर्ष की अवस्था में ये स्कूल में पढ़ने लगे और २० वर्ष की अवस्था में इन्होंने उस समय की सबसे ऊँची परीक्षा में उत्तीर्ण हो कालिज की पढ़ाई समाप्त की। सन् १८५० ई० में ये अनुवादक के पद पर नौकर हुए। पांच ही वर्ष में ये तहसीलदार नियत हुए। यहां इन्होंने इस योग्यता से काम किया कि दो ही वर्षों में ये डिप्टी कलक्टर बना दिये गये। इस पद पर ये निरन्तर उन्नति करते गये और अन्त में सन् १८८८ में ४०० रु० मासिक की पेंशन लेकर अपने घर आगरे में रहने लगे। इनका देहान्त आगरे ही में १४ जुलाई सन् १८९६ को हुआ।

सन् १८५७ के बलवे के समय इन्होंने गवर्नमेंट की बड़ी सहायता की थी। उसके उपलक्ष में इन्हें आगरे के पास ही एक इलाका माफी मिला और २००० रु० की खिलअत दी गई तथा सन् १८७७ के दिल्ली दर्बार में राजा की उपाधि अर्पित हुई।

सबसे पहले सन् १८६१ में इन्होंने शकुन्तला नाटक का हिन्दी गद्य में अनुवाद किया। इस अनुवाद की बड़ी प्रशंसा हुई, यहां तक कि इङ्गलैण्ड में इसका एक संस्करण अंगरेजी में टीका टिप्पणी सहित छपा जो अब तक प्राप्य है। पीछे सन् १८८९ में राजा लक्ष्मण सिंह ने इस नाटक का दूसरा संस्करण किया जिसमें गद्य के स्थान में गद्य और पद्य के स्थान में पद्य में अनुवाद हुआ। यह अनुवाद भी बहुत अच्छा हुआ। सच बात तो यह है कि राजा साहब ने इस नाटक के अनुवाद में जैसी सुन्दर, रसीली और सीधी भाषा का प्रयोग किया है वैसी आज तक किसी और की लेखनी से नहीं निकली।

सन १८७८ में राजा साहब ने रघुवंश का अनुवाद हिन्दी गद्य में किया। वह अनुवाद भी अच्छा हुआ है।

तीसरा ग्रन्थ राजा साहब का मेघदूत का पद्यात्मक अनुवाद है। सन् १८८२ में इस ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध का अनुवाद प्रकाशित हुआ और सन् १८८४ में सम्पूर्ण ग्रन्थ का। इसके अनन्तर सन् १८९३ में इस ग्रन्थ का तीसरा संस्करण राजा साहब ने छपवाया। अब यह ग्रन्थ एक प्रकार से अप्राप्य है। कठिनता से कहीं कहीं इसकी प्रति देखने को मिल जाती है। यद्यपि मेघदूत के अनेक अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं और बराबर प्रकाशित होते जाते हैं पर इस बात के कहने में कोई भी संकोच नहीं होता कि राजा साहब का अनुवाद बहुत ही अच्छा हुआ है और कई बातों में इसकी समता दूसरे अनुवाद नहीं कर सकते।

इन तीन ग्रन्थों के अतिरिक्त राजा साहब ने 'प्रजाहित' नाम का एक पत्र निकाला था और 'दण्ड-संग्रह' नाम से ताजीरात हिन्द का हिन्दी में अनुवाद किया था। गवर्नमेंट के लिए इन्होंने कई अन्य ग्रन्थों का अनुवाद भी किया है, परन्तु राजा साहब की उत्कृष्ट कृतियों में से केवल शकुन्तला, रघुवंश और मेघदूत के अनुवाद हैं जो हिन्दी-संसार में उनकी कीर्ति को बनाए रखने के लिये अलम् हैं।

यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य को एक स्थिर रूप देकर उसको परिष्कृत और प्रसाद-गुण-सम्पन्न बनाया परन्तु लल्लूलाल के पीछे राजा लक्ष्मण सिंह ने ही उसके नये रूप को काट छाँट कर सुन्दर और मनोहर बनाया। हिन्दी गद्य को उत्कृष्ट रूप देने का यश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को प्राप्त है पर इसमें सन्देह है कि यदि राजा लक्ष्मण सिंह अपनी लेखनी द्वारा उसे एक उत्तम रूप न दे गये होते तो भारतेन्दु जी को अपने उद्योग में इतनी सफलता प्राप्त न होती।

लखनऊ
१-१०-१७

श्यामसुन्दर दास

—.*:०.*.—

'समर्पण'

To,

F s Growse, Esr. C. I. E.,

Magistrate and Collector of Buland Shahar.

In recognition of his interest,

In the Development of Hindi Literature.

This Metrical Hindi Version of the Cloud Messenger of Kalidas is dedicated by the

Buland Shahar
24th June 1882 } Translator

श्रीयुत

फ्रेडरिक सीलीन गुरूस साहिब

एम० ए० सी० आई० ई०

को

हिन्दी भाषा के प्रवृद्योत्साही जानकर कालिदास के मेघदूत काव्य का यह हिन्दी छन्दवद्ध अनुवाद उलथाकार ने उनको अर्पण किया।

—:·:o:*:—

समालोचना

श्री ल० श्रीयुक्त क० व० सु० सम्पादक महाशय ! मेघदूत हिन्दी अनुवाद बुलन्द शहर के डिप्युटी कलेक्टर राजा लक्ष्मण सिंह बहादुर कृत ।

दोहा - समालोचना

धन्य धन्य भारत वरस, सकल वरस सिरताज ।
जहा व्यास वलमीक सम, प्रगटे कवि कुल राज ॥ १
कालिदास भारवि प्रभृति, उपजे याही ठौर ।
ऐसे अनत न होयंगे, भये नहीं कहुँ और ॥ २
श्री गोवर्द्धन भट्ट हरिचन्द्र आदि कवि राइ ।
रत्न सुभारत भूमि के, इनतें अधिक सुहाइ ॥ ३
इनकी रचना वाहिनी सज्जन हृदय सुदेस ।
सींच रही अभिनव रुचिर, तरल तरग असेस ॥ ४
जो भारत कवि सहज ही, कियो चित्र निर्मान ।
औरन से नहि हो सकी, प्रवल परिश्रम ठान ॥ ५
यह सौरभ माधुर्य्य पुनि, यह लालित्य रसाल ।
और कहीं नहि पाइयो, खोजो तीनहु काल ॥ ६
मेघदूत रचना मधुर, कालिदास कविराज ।
वनी अलौकिक रसमयी, जानत विवुध समाज ॥ ७
ता भाषा अनुवाद अब, लक्ष्मण सिंह नरेश ।
कियो छन्द स्वच्छन्द हैं, कवि कुल कमल दिनेश ॥ ८
"जितनो आशय मूल में, जितने पद कवि उक्त ।
जितनो भाव जहा लिखो, उतनो कियो युयुक्त ॥ ९
उनहीं के पर्य्याय पद उनहीं के समअर्थ ।
उनहीं ते वादित कियो लियो न और समर्थ ॥ १०
विन संसय कहिये यही अति रसमय अनुवाद ।
वाचन रसिकन के हृदय उपजे विविध प्रसाद ॥ ११
"देखी विरही एकविध समझायो निजदूत ।
गद्यपद्य कर तीन विध समझायो नृप दूत ॥ १२
को दयालु ऐसे सुनो जो विरही हितकार ।
मेघदूत सा दूत सो समझायो कह वार ।
अब यह आशा करत हैं भाषा वारिध चन्द ।
औरहु रचना चन्द्रिका करि हरिहैं दुखद्वन्द ॥ १३

—राधाचरण गोस्वामी

—०*०*०—

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

जीवनवृत्त

हिन्दी साहित्य-वाटिका को अपने "धारा-धर" की अजस्र पीयूष-धारा से सिंचित कर उसमें समस्त ऋतुओं के अनुपम वैभव-विलास का दिग्दर्शन करानेवाले और 'चिर-वसंत' को प्राप्त करने की युक्ति बतानेवाले कवि पूर्ण का जन्म सवत् १९२५ मार्गशीर्ष-कृष्ण १३ को, जबलपुर में रायवंशीधर वकील के घर हुआ था। माता का नाम यमुना था जैसा कि ये स्वयं अपनी पुस्तक "राम-रावण-विरोध" में लिखते हैं—

"सुमिरि जस पुलकि उठत मम गात,
श्री जमुना जननी शुभ मेरी श्री वंशीधर तात,
भद्र भद्रपुर सुठि गृह मेरो वृत्ति सुछंद सुहात,
'पूरन' चित्रगुप्तवंशी कवि-संगति लहि हरखात।"

इनके पूर्वजों का स्थान भदरस या भद्रपुर गाँव है जो कानपुर की घाटमपुर तहसील में स्थित है। मुगलों के समय में इनके पूर्वजों को ८४ गाँवो के साथ रु० ३०००) वार्षिक मिला था। उसी समय से इनकी वंश-परम्परा मे 'राय' की पदवी चली आ रही है। इसी वंश मे कई पीढियों के बाद मुन्शी राम-गुलाम जी कानूनगो हुए जिनके एक पुत्री और चार पुत्र थे। इनके नाम थे, अयोध्याप्रसाद, लीलाधर, वंशीधर, और मुरलीधर। रामगुलाम जी बड़े सौभाग्यशालो थे क्यों कि इनके सभी पुत्र योग्यता में एक से एक बढ कर थे। लीलाधर जी मध्यप्रदेश मे "एक्सट्रा-असिस्टैन्ट-कमिश्नर" थे, अयोध्याप्रसाद जी पुलिस मे इन्स्पैक्टर थे और वशीधर जी जवलपुर मे वकालत कर रहे थे। शिशु देवीप्रसाद में अपने इस प्रतिष्ठित वंश के सभी गुण पूर्णरूप से विद्यमान थे। किन्तु विधाता ने इस बालक के प्रति घोर अन्याय किया, चार वर्ष की अवस्था मे ही उसे अपने पिता की छत्रछाया से वचित होना पडा। परन्तु चचा लीला-धर ने कभी भी उसे पितृ-प्रेम के अभाव को खटकने न दिया और बड़े लाड-प्यार

से उन्होंने देवीप्रसाद का पालन-पोषण अपने पुत्र, दुर्गाप्रसाद के साथ किया। इसीलिए देवीप्रसाद जी का अपने भैया के साथ अन्तिम समय तक अत्यधिक प्रेम था।

बाल्यावस्था से ही देवीप्रसाद अत्यन्त सुशील, शान्त और नम्र स्वभाव के थे किन्तु बुद्धि इनकी कुशाग्र थी। किसी सीमा के बन्धन में इनकी प्रतिभा नहीं रह सकती थी। इसीलिए ये जहाँ एक ओर संगीत और काव्य-कला के उपासक थे वहीं दूसरी ओर ये गणित जैसे नीरस विषय के भी अनुरागी थे। विनीत इतने थे कि कभी भी अपने ज्ञान—संचय की चर्चा न करते थे। अपने स्कूल-जीवन से ही ये चुपचाप हिन्दी साहित्य का अध्ययन कर रहे थे किन्तु उस समय इनके सहपाठियों तक को इस बात का पता न था।

इनकी योग्यता का अनुमान तो इनके परीक्षाफलों से ही हो जाता है। इन्होंने मिडल-परीक्षा रायपुर जिलास्कूल से प्रथम श्रेणी में पास की और छात्रवृत्ति प्राप्त की। सन् १८८४ में कलकत्ता विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा में प्रथम आए। (उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के क्षेत्र में बंगाल ही नहीं देश का अधिकांश भाग था) इसी प्रकार इन्होंने एफ. ए. और बी. ए. परीक्षाएँ भी कलकत्ता विश्वविद्यालय से पास कीं। इन्होंने गणित लेकर बी० ए० ऑनर्स किया था। अपने पिता के पद-चिन्हों पर चलने की इच्छा के कारण इन्होंने बी० एल० भी पास किया। कुछ दिन तक जबलपुर में ही अपने भाई रायदुर्गाप्रसाद के साथ वकालत की। उसके बाद कानपुर में अपना काम शुरू किया।

इनका विवाह भोपाल के मुंशी शंकरप्रसाद 'दास' की कन्या से हुआ। 'दास' जी ही वास्तव में इनके काव्य-गुरु हैं क्योंकि सर्वप्रथम उन्हीं ने पूर्ण जी की आरम्भिक कविताओं को शुद्ध किया था और साथ ही उनको काव्य-शास्त्र-सम्बन्धी मुख्य नियम भी समझाए थे। यों तो कानपुर के कवि "ललित" के सम्पर्क में आने से भी इन्हें बहुत प्रेरणा मिली होगी किन्तु 'ललित' उनके काव्य-गुरु नहीं कहे जा सकते क्यों कि उनसे भेंट होने से पहले ही पूर्ण जी ने कविता-कामिनी का शृंगार करना आरम्भ कर दिया था। प्रथम पत्नी की मृत्यु के बाद इनका दूसरा विवाह कानपुर के ही वकील बाबू गोपाललाल खरे की बहिन से

हुआ। परन्तु इनके साथ जीवन सुखी न हो सका। तब मित्रो और सम्बन्धियों के अत्यधिक आग्रह पर इन्हे विवश हो तीसरा विवाह करना पड़ा।

नाटक खेलने का इन्हें बहुत शौक था। फाल्गुन महीने मे ये अपने गाँव में धनुष - यज्ञ को लीला कराते थे और स्वय भी उसमें भाग लेते थे। अपनी मृत्यु का आभास शायद इन्हें पहले से ही हो गया था क्योंकि मृत्यु के दो महीने पहले इन्होने अपने भाईसाहब को लिख दिया था कि, "मेरा नृत्य समाप्त हो गया है। आपके और भावज के दर्शन की अभिलाषा है।" ३० जून सन् १९१५ को दिन के बारह बजे के करीब ४७ वर्ष की अवस्था में पूर्ण जी काल की गंभीर लहरों मे विलीन हो गए।

सार्वजनिक जीवन

पूर्ण जी कानपुर के सभी सार्वजनिक कार्यों में बड़े उत्साह से भाग लेते थे। कानपुर-म्युनिसिपल बोर्ड के आप सदस्य थे तथा कानपुर-प्यूपिल्स एसोसिएशन के सभापति थे। सनातनधर्म प्रेमी होने के कारण इन्होंने "श्री ब्रह्मावर्त-सनातनधर्म-महामंडल" की स्थापना की और जुलाई १९११ में इस संस्था की ओर से "धर्मकुसुमाकर" नामक पत्र निकाला।

पूर्ण जी की वक्तृत्व-शक्ति इतनी तीव्र थी कि वे किसी भी समय किसी भी विषय पर घंटो बड़े प्रभावोत्पादक ढग से धारा-प्रवाह बोल सकते थे।

पूर्ण जी थियोसोफिकल-सोसाएटी के भी सदस्य थे और श्रीमती एनी बीसेंट के प्रति इनकी बडी श्रद्धा थी।

पूर्ण जी के जीवन के साथ कानपुर के "रसिक-समाज" का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक है। इन दोनों का तो अन्योन्याश्रय सम्बन्ध था। कानपुर आकर पूर्ण जी ने इस "रसिक-समाज" में नवजीवन सचरित कर दिया था और "रसिक-समाज" ने पूर्ण जी की कवित्व-शक्ति को विकसित करने मे पूरा सहयोग दिया। पूर्ण जी ने "रसिक-वाटिका" नामक एक पत्रिका निकाली थी जिसमे इस "रसिक-समाज" के कवियों की कविताएँ प्रकाशित होती थीं। इस पत्रिका का जन्म अप्रैल सन् १८९७ मे हुआ था। इसके बन्द हो जाने पर जनवरी १९०५ को "रसिक-मित्र" का जन्म हुआ।

रचनाएँ तथा विचार

इनके राजनीतिक विचार नरम दल के थे, गरम दल की उग्रता से ये सहमत न थे। अपने इन विचारों को इन्होंने "स्वदेशी कुंडल" में अभिव्यक्त किया है। यूं तो पूर्ण जी भी ब्रजभाषा की मधुरता के पक्षपाती थे किन्तु सन् १९१० दिसम्बर में इन्होंने खड़ी बोली में "स्वदेशी कुंडल" की रचना की। पचीस पृष्ठों की यह एक छोटी सी पुस्तिका है और इसे उन्होंने अर्पण किया था सर्व-साधारण के हृदय में स्वदेशी का उत्साह पैदा करने के लिये उस वर्ष की "प्रयाग-प्रदर्शिनी के चिरस्मरणार्थ सच्चे स्वदेशी के सच्चे अनुरागियों को," इसमें वे अपने देशवासियों से कहते हैं—

"सरकारी कानून का रख कर पूरा ध्यान,
कर सकते हो देश का सभी तरह कल्यान।
सभी तरह कल्यान देश का कर सकते हो,
करके कुछ उद्योग सोग सब हर सकते हो।
जो हो तुममें जान, आपदा भारी सारी,
हो सकती है दूर, नहीं बाधा सरकारी।"

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि पूर्ण जी देशभक्त तो पूरे थे किन्तु वे बुद्धिमानी से काम लेना चाहते थे। इसी लिये तो वे अपने देशवासियों को जागृत करने के लिये पुकार पुकार कर कहते हैं।

"विगत आलस की रजनी भई,
रुचिर उद्यम की द्युति छै गई।
कुमति - नींद अहो अब त्यागिए,
भरतखंड - प्रजागण जागिए।
× × ×
जलज - पुंज मनोरथ के खिले,
मधुप हैं पुरुषारथ के मिले।
विहित कारज में हठ लागिए,
भरतखंड - प्रजागण 'जागिए'॥

(पूर्ण संग्रह, पृ० २०३, जागिए)

अपनी "वसन्त वियोग" कविता में भी पूर्ण जी ने प्रकृति वर्णन के माध्यम से अपने देश-प्रेम को अभिव्यक्त किया है। यह पहले सन् १९१० में 'सरस्वती' पत्रिका में छपी थी, उसके बाद सन् १९१२ में "धर्मकुसुमाकर" में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई थी। इस कविता में भारत के स्वर्णिम अतीत, वर्तमान दुर्दशा और आशापूर्ण भविष्य का सुन्दर वर्णन है। प्राचीन काल में भारत रूपी उपवन में मधुमास सदा नृत्य किया करता था किन्तु एक दिन—

"था जहाँ बारामास
ऋतुराज चारु विलास,
पहुँचा वहाँ भी रोग,
भारी वसंत वियोग।

× × ×

विधि हो गया कुछ वाम,
माली हुए उद्दाम,
घटने लगा निष्काम
उस वाटिका का काम।

× × ×

अन्तिम वसन्त - विभास,
रक्षक सुशील निवास,
माली सु - कुल सरताज।
रणधीर पृथ्वीराज॥

अति प्रबल रिपुदल जीत,
था सकल शंकातीत
पर एक उसका तात
विश्वास का कर घात,

मिल शत्रुओं के साथ
दे बाग उनके हाथ।
लै मरा घोर कलंक,
ह्यां मिटा सुख का अंक।"

किन्तु इस कविता का अन्त कवि इस भविष्यवाणी के साथ करता है—

"आनन्द - चन्द्रिका की होगी उजियाली,
'पूरन' प्रबोध रवि चमकेगा द्युतिशाली ।
इस भाँति निवासी वर्ग मोद पावेगा,
तुम धैर्य धरो फिर भी वसन्त आवेगा ।"

(पूर्ण संग्रह पृ० १६६)

पूर्ण जी प्रकृति के प्रेमी थे। अत इन्होंने प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन भी किया है और उद्दीपन के रूप में भी। इन्होंने अपने काव्य की चित्रपटी पर समस्त ऋतुओं की छटा को अंकित किया है और चातक, चकोर, बीरबहूटी आदि को भी नहीं भूले हैं।

वसन्तागम से चारों ओर नव-उत्साह छा गया है किन्तु एक ऐसी भी 'बावरी' है जो इसके बारे में बिलकुल बेखबर है। कवि कहता है—

लाल बन बागन की भूरि छवि होन लागी,
विकसन लागी भीर टेसू छविवंत की,
अरविंद-पुंजन पै गुंजन मलिंद लागे,
विलसन लागी रैन आभा निसिकंत की।
बजन लगी है कुंज बंशी मंजु सावरे की,
मोहन लगी है भीर गोपिन अनंत की;
खोय कै सुरति एक बैठी गृह मान ठानि,
बावरी अजौं न तोहि खबरि बसन्त की ॥

(पूर्ण संग्रह, पृ० १००)

वर्षा का स्वतन्त्र रूप से वर्णन पूर्ण जी ने इस प्रकार किया है—

"सुखद सीतल सुचि सुगंधित पवन लागी वहन,
सलिल बरसन लगो वसुधा लही सुखमा लहन
लहलही लहरान लागी सुमन बेली मृदुल,
हरित कुसुमित लगे झूमन विरिछ मंजुल विपुल।"

(पूर्ण संग्रह पृ० १०९)

"शरद-ऋतु के निर्मल आकाश मे तारागण," की शोभा को देखकर मनुष्य आश्चर्यचकित रह जाता है। किन्तु पूर्ण जी के पास इसका सुन्दर समाधान है—

"सरद-निसा मे व्योम लखि कै मयक बिन,
पूरण हिये में इमि कारन बिचारे हैं,
विरह जराई अबलान को दहत चंद्र,
तातैं आज तापै विधि कोपे दयावारे है।
निसिपति पातकी को तम की चटान बीच,
पटकि पछारि अग निपट बिदारे हैं,
तातैं भयो चूर—चूर उचटे अनत कन,
छिटिके सघन सो गगन मध्य तारे हैं।"

(पूर्ण संग्रह। पृ० ११७)

पूर्ण जी की काव्य-प्रतिभा शृगार, शान्त और भक्ति-रस के क्षेत्र मे अधिक चमकी है। भक्ति के बारे मे उनका बिचार है—

"सजि लीजिए हार सरोजन के चहै पीजिए जो हिम को जल है,
चहै न्हाइये अमृत के सर में चहै खाइए जौन सुधा फल है।
निगमागम 'पूरन' टेरि कहै वृथा चंदन चांदनी को बल है,
हरि के पद-पंकज धारे बिना नर-हीतल होत न शीतल है।"

पूर्ण जी की शातरस की कविताएँ अधिकतर खडी बोली मे ही हैं, जैसे—

"शकर की कैसी माया है,
दिन है कहीं कहीं है रजनी, कहीं धूप कहीं छाया है।"

(पू० स० पृ० १८०)

वेदान्त मे इनकी बहुत रुचि थी। इसीलिये इन्होने शंकराचार्य के प्रसिद्ध वेदान्त-ग्रन्थ "तत्वबोध" का छन्दबद्ध अनुवाद "तत्वतरगिणि" के नाम से किया। "मृत्युजय" का भी अनुवाद किया था। सस्कृत के प्रसिद्ध काव्य "रभा-शुक-सवाद" का हिन्दी रूपान्तर तो अत्यन्त मनमोहक बना है—

रभा—"वीथी वीथी आम की कुज मावै,
कुजे कुजै कोकिला मत्त गावै।

गाये गाये मानिनी मान जावैं
जातैं जातैं काम को रंग आवें।"

शुक—"बीथी बीथी साधु को सग पैये,
संगै संगै कृष्ण की कीर्ति गैये।
गाए गाए एकनाई प्रकासैं,
एकै एकै सच्चिदानंद भासैं'

× × × ×

रमा—"श्यामा कामा सुन्दरी रूपधारी,
गोरी भोरी काम की-सी सवारी।
वाकी बाहें आपने कंठ डारी,
भेंटी नाही तो वृथा देहधारी।

शुक—"लक्ष्मी पी की साँवरी मूर्ति प्यारी,
देवी देवै मोद की देनहारी।
चंद्राभासी मंद मुस्क्यानधारी,
ध्याई नाहीं, तौ वृथा देह धारी॥"

कालिदास रचित "मेघदूत" का अनुवाद पूर्ण जी ने "धराधरधावन" नाम से ब्रजभाषा में किया था। इसका पूर्व भाग जनवरी सन् १९०२ मे प्रकाशित हुआ था और द्वितीय भाग उसी वर्ष मई मे छपा था। इसकी भूमिका मे पूर्ण जी ने लिखा है—"दोनों एक साथ इसलिये नही छपवाये गये कि हमको समग्र ग्रन्थ प्रकाशित कराने के पहिले यह जानने की इच्छा थी कि प्रथम भाग पर विद्वानो की क्या सम्मति होती है।" पूर्व मेघ का अनुवाद अवन्तिका-प्रसंग तक हरिगीतिका छन्द मे और शेष नरेन्द्र छन्द में किया है। द्वितीय भाग का अनुवाद ३७ वें श्लोक तक दण्डक छन्द मे हुआ है। उसके बाद स्रगधरा मे।

पूर्ण जी द्वारा लिखित "चद्रकला भानुकुमार नाटक यद्यपि काव्य-सौन्दर्य से परिपूर्ण है तथापि अभिनेयता की दृष्टि से अधिक सफल नहीं है।

इन्होंने "राम-रावण विरोध" नामक एक छोटा सा चपू भी लिखा। सर्व-

प्रथम यह संवत् १९६३ में "भारतमित्र" के पूजावाले अंक के लिये लिखा गया था और बाद अक्तूबर सन् १९०६ में पुस्तक रूप में छपा था

"राजदर्शन" मे १६११ के दिल्ली दरबार का वर्णन है किन्तु इसका कोई साहित्यिक महत्व नहीं है क्यों कि उस समय के प्रायः सभी स्वदेश-भक्त कवियों को सरकार की कोप-दृष्टि से बचने के लिए अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन करना पडता था।

प्रो० उर्मिला भंडारी एम० ए०



कालिदासत्रयी

किसी से भी पूछ देखिये कह देगा कि कालिदास विक्रमादित्य के समकालीन थे। कितने कालिदास और कितने विक्रमादित्य का प्रश्न उसके सामने नहीं। लेकिन पुराणवादी जो तीन तेरह के चक्कर मे पड़े रहते है, उनका कहना है कौन सा कालिदास किस विक्रमादित्य के शासन मे हुआ। पीछे की कौन कहे? राजशेखर के पहले भी तो तीन कालिदास हो गये हैं और विक्रमादित्यों की तो गणना ही कौन करे। लेकिन ध्यान से देखना होगा स्वयं राजशेखर का मत क्या है—

> एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
> शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥ ६० ॥
>
> (सूक्ति मुक्तावली, कविकाव्य प्रशसा)

इसी के आधार पर तीन कालिदासो की सम्भावना स्थिर है। किन्तु राजशेखर की उक्ति का सीधा अर्थ यह है कि कालिदास का एक ही काव्य उन्हें सर्वोपरि सिद्ध करने मे पर्याप्त है, फिर उनके तो तीन काव्य हैं और तीनो में ललितोद्गार है शृगार का। अस्तु शृङ्गार मे ललित चित्रण में उनकी समता तो कोई कर ही नहीं सकता। इसकी कल्पना भी कठिन है। इसका निश्चित निर्देश है कवि कालिदास के तीन ललित प्रबन्धों की ओर, न कि तीन कालिदासो की ओर।

कुमारसम्भव और मेघदूत का तो कहना ही क्या? रघुवश मे भी इसी ललितोद्गार की प्रमुखता है। यहा तक कि कवि 'ताडका' के निधन के प्रसग मे लिखता है।

> राम मन्मथ शरेण ताड़िता दु:सहेन हृदये निशाचरी ।
> गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेश वसति जगाम सा ॥ २० ॥ ११

इसीसे जाना जा सकता है कि शृङ्गार के ललितोद्गार तथा 'शृङ्गार' और 'ललितोद्गार' मे कालिदास का महत्व क्या है? उनकी दृशत्रयी मे भी यही

बात है। 'मालविकाग्नि मित्र', 'विक्रमोर्वशीय' एवं 'अभिज्ञानशाकुन्तल' तीनों में शृङ्गार और ललितोद्गार है। निदान राजशेखर के उपर्युक्त कथन के आधार पर एक कालिदास को तीन कालिदासों मे बांटना ठीक नही।

कालिदास का समय

राजशेखर ने लिखा है—

इह कालिदास मेण्ठावयामररूप सूर भारवयः।
हरिश्चन्द्र चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्॥

इसमें 'परीक्षितौ' प्रयोग बड़े काम का है जिससे सिद्ध होता है कालिदास तथा मेण्ठ के साथ काव्यकार के रूप में परीक्षा हुई। इससे भी स्पष्ट होता है कि कालिदास तथा मेण्ठ समकालीन थे। मेण्ठ के विषय मे कल्हण का कथन कि 'विक्रमादित्य तोप्यासीदभिगम्यः शुभार्थिनाम्॥ २५८॥

अन्तरज्ञतया तस्य तादृश्या कृतसत्कृतिः।
भर्तृमेण्ठ. कविर्मेने पुनरुक्तं श्रियोर्पणम्॥ २६२॥
(राजतरगिणी, तृतीय तरंग)

इससे जाना जाता है कि 'मेण्ठ' वा 'भर्तृमेण्ठ' मातृगुप्त के समकालीन थे और मातृगुप्त काश्मीर के शासक थे 'विक्रमादित्य' की ओर से।

इस प्रकार इन सब का एक ही काल में होना आप ही सिद्ध हो जाता है। किन्तु कल्हण ने विक्रमादित्य का जो परिचय दिया है वह स्थिति को स्पष्ट करने में पर्याप्त नहीं है। इस विक्रमादित्य का दूसरा नाम यदि 'हर्ष' न दिया गया होता तो आप इसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ही समझते और इसी प्रकार यदि मातृगुप्त का नाम न होता तो आप इस 'कवि' को भी कालिदास ही समझते। कल्हण के 'शकारि' को लीजिये और देखिये उसके विषय में किसी और का कुछ कहना है अथवा नहीं। सो सौभाग्य से कवि अभिनन्दन की साखी सामने है।

हालेनोत्तमपूजया कवि वृष. श्री पालितो लालित.
ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीता शकरातिना।
श्रीहर्षो विनतार गद्यकवये वाणाय वाणी फल
सद्यः सत्क्रियया ऽभिनन्दमपि च श्रीहार वर्षोऽग्रहीत्॥
(रामचरित, गयकवाड प्राच्यमाला - ४६ सर्ग ३३)

इससे इतना तो स्पष्ट हो गया कि कालिदास की ख्याति में किसी शकारि राजा का भी हाथ है। इसी 'शकारि' के सम्बन्ध में अभिनन्द कहता है।

> शक भूपरिपोर नन्तरं कवय॰ कुत्र पवित्र संकथा॰
> युवराज इवायमीक्षितो नृपति काव्य कला कुतूहली ॥
>
> (रामचरित, सर्ग २२)

> नमो नृपतिचन्द्राय पृथ्वीपालाय येन सा।
> विकालमलिना दिक्षु दर्शिता कवि पद्धति॰ ॥
>
> (रामचरित, सर्ग ४)

इससे स्पष्ट है कि 'अभिनन्द' की दृष्टि में पृथ्वीपाल नृपति 'चन्द' ही 'शकारि' और कवि कालिदास की ख्याति के कारण हैं। किन्तु यह भी कहा गया है कि राजा विक्रमार्क को व्याख्यात किया है कवि कालिदास ने—

> वाल्मीक प्रभवेण राम नृपतिर्व्यासेन धर्मात्मज॰।
> व्याख्यातः किलकालिदास कविना श्री विक्रमार्कोनृपः ॥
>
> सुभाषित

अस्तु कालिकाम का एक ओर 'शकाराति' से सम्बन्ध है तो दूसरी ओर 'विक्रमार्क' वा 'विक्रमादित्य' से। और इतिहास के जानकार कहते हैं कि वास्तव में 'विक्रमार्क' ही 'शकाराति' वा 'शकभूपरिपु' किंवा शकारि भी हैं।

चन्द्रगुप्त काव्यकार भी थे क्योंकि उनके विषय में वाण का कथन है—

> पदबन्धोज्ज्वलोहारि कृतवर्ण क्रमस्थिति॰।
> भट्टार हरिश्चन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते ॥ १८ ॥
>
> (हर्ष चरित, प्रथम उछ्वास)

श्री भगवद्दत्त की शोध है—

शक १०३३ (स॰ ११६८) का वैद्यराज तथा गद्यपद्य कवि महेश्वर अपने विश्वप्रकाश कोश की भूमिका में लिखता है —

> श्री साहसाक नृपतेरनवद्य वैद्या विद्यानटग पदमद्वय मेव बिभ्रत्।
> यश्चन्द्रचारुचरितो हरिचन्द्र नामा स्वव्याख्यया चरक तन्त्र मलचकार ॥

सूक्ति मुक्तावली पृ॰ ८९, पृ॰ ४४, एपिग्राफिया इंडिका, भाग, ७ पृ॰ ३६

काम्बे ताम्रपत्र, संजन ताम्रपत्र, हर्षचरित पष्ठ उछ्वास, सरस्वती कण्ठाभरण तथा काव्य मीमासा अध्याय १०, पृ० ५०, इत्यादि के आधार पर साहसाक तथा चन्द्र गुप्त और शकारि के एक होने मे कोई सन्देह नहीं रह जाता।

कहा जा सकना है कि उज्जयिनी का 'साहसाक' कोई और है, चन्द्रगुप्त तो मगध का सम्राट है। मुद्राओ इत्यादि के आधारपर तथा ताम्रपत्रो इत्यादिक के पुष्ट आधारो पर निश्चित हो जाता है कि ई० ४०१ तक चन्द्रगुप्त राजर्षि समझे जा रहे थे। इसी विजय से चन्द्रगुप्त विक्रमाक बने, विक्रमादित्य की प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित हुए और उज्जयिनी को राजधानी का पद मिला। कर्नाटक के कुछ शासको ने उन्हें उज्जयनीपुरपराधीश्वर कहा भी है। अस्तु चन्द्रगुप्त उज्जयिनी नाथ विक्रमादित्य भी है।

कालिदास का नीति चातुर्य

'कुन्तलेश्वर दौत्य' के आधार पर स्थिर होता है कि कभी कालिदास ने विक्रमादित्य की ओर से दूत का कार्य भी किया था। इसका उल्लेख कुन्तलेश्वर ने 'औचित्य विचार चर्चा' में किया है। इस प्रसग मे कालिदास के इस दौत्य कर्म का सम्बन्ध कुछ विद्वानो ने विवाह व्यापार से जोड़ा है। किन्तु हमारी समझ में इसका प्रणय से कोई सम्बन्ध नहीं। उसमें खरी राजनीति भरी थी। सामन्त और सम्राट की मर्यादा का प्रश्न था। इसका समर्थन भोजदेव के शृंगार प्रकाश, (अष्टम प्रकाश) से हो जाता है।

'कुन्तल' का जो प्रदेश 'कदम्बकुल' से निकल कर 'वाकाटक' वश मे चला गया था वही जब फिर श्री कृष्ण वर्मा के उद्योग से कदम्बकुल के हाथ लगा और प्रभावती गुप्ता के हाथ से जाता रहा तब उस के पिता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को इस की विशेष चिन्ता हुई। और जब उन्होंने उस के 'अश्वमेध' का रंग देखा तब ताड़ गए कि यह कुछ और चाहता है। तब उसे साधने के लिए कालिदास को दूत बना कर भेजा और कालिदास ने छूटते ही दिखा दिया कि वास्तव में 'सामान्त' और 'सम्राट' के व्यवहार मे क्या भेद होता है और चक्रवर्ती के लक्षण क्या हैं? (कुन्तलेश्वर दौत्यम्) यह उनकी नीति निपुणता का ज्वलन्त प्रमाण था।

इस प्रकरण से कालिदास को नीति निपुणता का आभास तो मिल ही जाता है, पर यदि कहा जाय कि वास्तव मे इन्ही कालिदास ने 'विक्रमादित्य' के शासन मे 'मातृगुप्त' के नाम से काश्मीर का शासन भी किया था तो आप को विश्वास शायद न हो। लेकिन इस प्रसंग मे कल्हण ने क्या कहा है यदि उसे भी देखा जाय तो लाभ होगा—

विक्रमादित्यमुत्सिक्तमुच्छेत्तु यतते मन.
मातृगुप्तं प्रति न नो रोषेणारुपित मन. ॥२८२॥३॥

प्रवर सेन की श्री विक्रमादित्य से गहरी शत्रुता है।

वह पितृशोक के कारण आंसू पीकर रह जाता है और विक्रमादित्य के उन्मूलन का सकल्प करता है (रा० त० २६६॥३॥) आगे चलकर यह कहता है कि मातृगुप्त का अभिषेक कुछ 'आमात्यों' को नहीं भाया और उन्होने युद्ध का उपाय सोचा किन्तु प्रवर सेनने उसे उचित नहीं समझा। (रा० त० २८१॥३॥) लेकिन वाद 'त्रिगर्त' को जीतकर जब वह आगे बढ़ रहा था उसी समय उसने विक्रमादित्य के निधन का समाचार सुना। मातृगुप्त ने काश्मीर का त्याग कर काशी की शरण ली। प्रवरसेन की मातृगुप्त से भेंट हुई तब उसकी आँख खुली और वह समझ सका कि मातृगुप्त और विक्रमादित्य क्या थे? कल्हण की दृष्टि मे भी मातृगुप्त कवि ही हैं।

नाना दिगन्तराख्यात गुणवत्सुलभ नृपम्।
त कविर्मातृगुप्ताख्य. सर्वस्थानस्थमासदत् ॥१२९॥ रा० त०

केवल कवि ही नहीं कहता उन्हे खुले रूप मे 'कवीन्द्र' कहता है—

तदाकर्ण्य महीपाल. साधुवादै. परिश्रमम्।
अभिनन्द्य कवीन्द्र त पूर्वस्थान व्यसर्जयत् ॥१८२॥३॥ रा० त०

कालिदास के समय मे उन्हे छोडकर किसकी दृष्टि मे कौनसा कवि 'कवीन्द्र' बना और आज भी उनको छोडकर कौनसा 'मातृगुप्त' उस का अधिकारी है? काश्मीर मे जाकर उसने जिस भागवतता का परिचय दिया वह उसकी नहीं उसके 'परम भागवत' प्रेषक की भावना थी। मातृगुप्त को केवल इस आधार पर कालिदास से अलग नहीं किया जा सकता। अस्तु मातृगुप्त को

कालिदास मानने में कोई बाधाशेष नहीं रह जाती, कालिदास यदि स्वच्छन्द कवि का प्रतीक है तो मातृगुप्त 'शासक' और 'प्रतिरूप' का। परन्तु काव्य दोनो को इष्ट हैं।

परिवार

कल्हण की राजतरंगिणी से अवगत होता है कि विक्रमादित्य के यहां 'मातृगुप्त' का प्रवेश कवि के रूप में नहीं 'भृत्य' के रूप में हुआ था और 'भृत्य' के कार्य से प्रसन्न होकर ही राजा ने उन्हें काश्मीर का राज्य दिया था। लेकिन मेरुतुगाचार्य कुछ और ही गाथा सुनाते हैं और कालिदास को 'पशुपाल, के रूप में विक्रमादित्य का जामाता बना देते हैं। उनके कहने का साराश यह है—

अवन्ती के राजा विक्रमादित्य की पुत्री 'प्रियंगुमंजरी' जब पढ लिख कर पंडिता हो गई तब यौवन मद के कारण उसे अपने आचार्य वररुचि से परिहास की सूझी। परिणाम यह हुआ कि उन्होने उसका गर्व चूर करने के लिये किसी प्रकार उसका विवाह एक महामूर्ख पशुपाल से करा दिया। जब भेद खुला तब भर्त्सना के अतिरिक्त 'प्रियंगु' के लिये और क्या रह गया। लेकिन पशुपाल भी अपनी आराधना से कालिदास बन गया।

[प्रवन्ध चिन्तामणि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला १९८९ वि० पृ० ४५]

कालिदास की कृतियों के अध्ययन से इतना तो व्यक्त हो जाता है कि उज्जयिनी उनकी भोगभूमि है। मेघदूत (२७, २८, २९, ३९, ४०) अथवा रघुवंश (३५॥६॥) इत्यादि में उज्जयिनी का वर्णन मिलता है उससे वह उनकी क्रीडा भूमि ठहरती है।

इनके जीवन के सम्बन्ध में एक अन्य सूचना भी मिलती है। श्री तारानाथ जैसे प्रसिद्ध विश्रुत बौद्ध का कहना है कि कालिदास का विवाह वाराणसी के राजा भीमशुक्र की विदुषी दुहिता 'वासन्ती' से हुआ। वररुचि यहा भी घटक हैं और कालिदास पशुपाल। भेद नाम मात्र का है। विशेषता यह है कि यहां कालिदास को 'मगध' का बताया गया है। यहा राजकन्या की प्रेरणा से कालिदास फूल जुटाते और काली की आराधना करते हैं। परिहास मे उसकी

दासी प्रसाद के रूप में अपना चबाया पान देती है और काली के प्रसाद को प्रत्यक्ष पाने से प्रसन्न हो वह उसको निगल जाते हैं। बस इसीसे उनमें दिव्य शक्ति का उदय होता है। दासी और वररुचि का उल्लेख प्रायः एक ही रूप में हुआ है। अन्तर केवल नाम और स्थान का है। मेरुतुंगाचार्य के यहा 'उज्जयिनी' है तो तारानाथ के यहा 'वाराणसी'। पहले में 'विक्रमादित्य' है तो दूसरे में 'भीमशुक्र'। 'प्रियंगुमंजरी' तथा 'वासन्ती' का नाम भेद भी कुछ ऐसा ही है। समय की दृष्टि से पहला सन् १५७० ई० के पहले का है तो दूसरा सन् १६०८ ई० का।

मैसूर तथा मगध में प्रचलित प्रवादों से पता चलता है कि कालिदास जन्म से ब्राह्मण थे। माता पिता के अभाव में एक ग्वाले ने उनका पालन पोषण किया था। मिथिला में तो दामोदरपुर का नाम भी बताया जाता है और वहीं का ग्वाला इनका पालक कहा जाता है। जनश्रुतियों में जो समानतथ्य मिलता है वह भी बड़े काम का है चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का जो सम्बन्ध मगध और अवन्ती से है उसे हम जानते हैं और 'साहसाक, तथा 'भीम' एवं 'आदित्य' तथा शुक्र में जो ज्योति है उसे भी हम भूल नहीं सकते। 'विक्रमोर्वशीय' के प्रसंग में किसी 'काशीराजपुत्री' को किसी 'कुवेर नागा' के रूप में भी देखा जा चुका है। तो क्या इन के अधार पर यह स्थापना नहीं की जा सकती कि वास्तव में कालिदास का विवाह 'श्री प्रभावती गुप्ता' की किसी सगी बहिन से हुआ था। विक्रमोर्वशीय की अपभ्रंश भी तो 'आभीरादिगिर' का ही प्रमाण है।

अत: यही बात सत्य ठहरती है कि कालिदास का विवाह 'विक्रमादित्य साहसाक' की राजदुहिता से हुआ था और उस के संसर्ग से इनमें कविता का बीज फूटा। कालिदास का कुछ लगाव प्रभावती गुप्ता से प्रत्यक्ष है। उस के पुत्र 'प्रवरसेन' के लिए 'सेतुबन्ध' की रचना चाहे उन्होंने न भी की हो पर उसका सशोधन उन्होंने अवश्य किया था। 'ऋतुसंहार' तथा 'मेघदूत' में विन्ध्य तथा आम्रकूट इत्यादि के ललित वर्णनो से भी निश्चय स्थिर होता है कि इस अचल से कालिदास का कुछ अति घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिए।

कालिदास की रचनाओं में 'ऋतुसंहार' और मेघदूत ही दो ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें कवि सर्वथा स्वच्छन्द हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो कवि की सयोग

और वियोग की लीला भूमि भी यही प्रदेश है। अतः अधिक सम्भावना है कि कवि का निवास भी यही कहीं रहा होगा। यहां का मार्ग भी कुछ वक्र है केवल उज्जयिनी का ही नहीं।

त्वय्यायत्तं कृषिफल मिति भूविकारनभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपद वधूलोचनैः पीय मानः।
सद्यः सीरोत्कषण सुरभिक्षेत्र मारुह्यमालं
किंचित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥ १६ ॥

कवि का जन्मस्थान यही अंचल है शायद इसी से उनकी 'रीति' को वैदर्भी कहा गया है।

लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विवशा गिरः।
तनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ॥ १५ ॥ (दण्डी)

(अवन्तिसुन्दरी कथा, दक्षिण भारतीय ग्रन्थमाला)

कालिदास की समस्त काव्य कृतियों के मंथन के बाद भी स्पष्ट यही देखने में आता है कि कालिदास ने जितना निकट से विन्ध्य प्रदेश को देखा है उतने निकट से शायद हिमालय को नहीं। कुमार सम्भव इत्यादि प्रायः सभी कृतियों में हिमालय के अद्भुत वर्णन है 'अवश्य' पर देव भूमि या देवता के ही रूप में। मानव की कर्मभूमि के रूप मे वहां का परिचय कम मिलता है। अर्थात् कालिदास के जीवन का जितना घना लगाव विन्ध्य से है उतना हिमालय से नहीं।

निधन

इनके निधन की कथा भी कम गुथी हुई नहीं है। 'विक्रम प्रबन्ध' (पुरातन प्रबन्ध सग्रह, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, १९२६ वि० पृ० १०) के अनुसार "कुमार सम्भव महाकाव्य मे श्रृङ्गार बाहुल्य के कारण कालिदास को शाप मिला कि वे स्त्री व्यसन के कारण प्राण त्याग करें। वे वेश्याव्यसनी हो गये। इससे क्रुद्ध होकर महाराज विक्रम ने उन्हे निकाल दिया और वे एक वेश्या के यहा रहने लगे। कालान्तर मे महाराज ने एक समस्या की पूर्ति पर एक लाख सुवर्ण-

मुद्रा के पुरस्कार की घोषणा की। वेश्या ने इसकी सूचना कालिदास को दी। कालिदास ने कहा कि वे पूर्ति कर देंगे किन्तु उसे वेश्या अपने नाम से पेश करे। यही हुआ। इसके उपरान्त धन लोभ के कारण उस वेश्या ने कालिदास के जीवन का अन्त कर दिया। समस्या की पूर्ति प्रस्तुत होने पर महाराज ताड गये कि वह उस वेश्या की कदापि नहीं हो सकती। महाराज ने शंका की तब वेश्या ने सारा वृत्तान्त बता दिया जिसे सुन कर महाराज अत्यन्त दुखी हुए।"

इसी का दूसरा रूप यह भी है कि कालिदास ने सिंहल द्वीप के राजा 'कुमार दास' के 'जानकी हरण' महाकाव्य की खूब प्रशंसा की थी। इसे सुन कुमार दास ने कवि को सिंहल में बुलाया। कालिदास वहा गये और राजा के अत्यन्त प्रिय पात्र वन गये कालिदास किसी दासी के यहां आया जाया करते थे उसने अपने दरवाज़े पर यह श्लोक लिख रखा था—

'कमले कमकोत्पत्तिः श्रूयते नतु दृश्यते'—कवि ने इसकी पूर्ति इस प्रकार की
'वाले ! तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्।'

कहा जाता है इसी सुन्दरी के कारण कालिदास मार डाले गये। कुमार दास इस दुर्घटना से अत्यन्त विचलित हुए और उन्होंने कवि की चिता पर आत्महत्या कर ली। अभी तक सिंहल द्वीप के दक्षिणी भाग में कालिदास की समाधि विद्यमान है। भारत में यह कथा इतनी प्रसिद्ध नहीं किन्तु सिंहल के अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख है।

कालिदास की मृत्यु का ठीक ठोक कारण तो किसी को भी ज्ञात नहीं किन्तु किसी सुन्दरी के द्वारा अथवा उसी के कारण इनका अन्त हुआ यही अति प्रसिद्ध है। भोज प्रबन्ध में श्री बल्लाल ने भी कालिदास के दुखद जीवन का वर्णन किया है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि उनके पराभव में लोग कितने लीन थे। कहते हैं कवि मंडली के प्रपंच में आकर राजा भोज ने कालिदास को अपने राज्य से निकाल दिया। किन्तु उनकी स्त्री 'विलासवती' ने उन्हें कहीं जाने न दिया और कहा—

न टेवास्य पर मित्र यत्र संक्रामति द्वयम्।
दृष्टे सुखञ्च दुःखञ्च प्रतिच्छायेव दर्पणे॥

लेकिन उसमें उनके विरूद्ध किये गये षड्यंत्रो को छोड कर मृत्यु का कोई जिक्र नहीं। निष्कर्ष केवल इतना ही निकलता है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के उपरान्त कुछ राजनीतिक दांव पेंच चले उन्हीं में कालिदास का अन्त हुआ और सम्भव हैं उनमें किसी सुन्दरी का भी हाथ रहा हो।

कालिदास की रचनाएँ

प्रामाणिक—१ शाकुन्तल—२ विक्रमोर्वशीय—३ मालविकाग्निमित्र—४ रघुवंश ५ कुमार सम्भव—६ मेघदूत—७ ऋतुसंहार—८ कुन्तलेश्वर दौत्य

कथित—अम्बस्तव, कल्याणस्तव, कालीस्तोत्र, गंगाष्टक, घटकर्पर, चण्डिका दण्डकस्तोत्र, ज्योतिर्विदाभरण, दुर्घटकाव्य, नलोदय पुष्पवाणविलास, मकरन्दस्तव, मङ्गलाष्टक, रत्नकोश, राक्षस काव्य, लक्ष्मीस्तव, विद्वद्विनोद काव्य, वृन्दावन काव्य, वैद्यमनोरमा, शृङ्गार तिलक, श्रुतबोध, सेतुबन्ध आदि।

(आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय कृत 'कालिदास' के आधार पर)

—:*:-:*:-:*:—

मेघदूत सुभाषित

परिशिष्ट (क)

१—आपन्नार्ति प्रशमन फला· सम्पदोह्युत्तमानाम् ।

[उत्तम जनों की सम्पत्ति पीडित जनों को शान्ति देने के लिये ही होती है ।]

२—आशावंध· कुसुम सदश प्रायशो ह्यङ्गनानां,
सद्य· पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

[विरहिणी वनिता के कुसुम से कोमल हृदय को आशा ही कुम्हलाने से बचाती है ।]

३—कामार्ताहि प्रकृति कृपणाश्चेतना चेतनेषु ॥ ५ ॥

[काम से जो पुरुष आर्त है वह चेतन और अचेतन में भेद नहीं कर सकता ।]

४—केवा नस्यु· परिभवपदं निष्फलारम्भ यत्नाः ॥ ५४ ॥

[निष्फल यत्न करने से जगत में कौन नहीं हसा जाता]

५—कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततोवा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ उ० ४६ ॥

[जीवन में कभी असीम सुख और कभी घोर क्लेश कुछ उसी प्रकार मिला करता है जैसे पहिये का भाग कभी ऊपर कभी नीचे जाया करता है ।]

६—केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थनाह्युत्तमेषु ।

[उत्तम जनों के द्वारा किसकी अभिलाषा पूर्ण नहीं होती ?]

७—न क्षुद्रोऽपि प्रथम सुकृता पेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते• मित्रे भवति विमुखः किम्पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ ७ ॥

[क्षुद्र जन•भी किसी समय अपने साथ उपकार करने वाले मित्र को पाकर उससे विमुख नहीं होता तो फिर उच्च जनों का तो कहना ही क्या है ।]

८—निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः ।
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥ ५१ ॥

[चातक की याचना पर तुम चुपचाप ही आकर उसकी प्यास बुझा दिया करते हो । सत्पुरुष प्रेमियों के इन्कार करते रहने पर भी उनकी अभिलाषा पूर्ण कर ही देते हैं ।]

९—प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्ति रार्द्रान्तरात्मा ॥ ३२० ॥

[कारुणिक हृदय वालों का हृदय पिघल ही जाता है]

१०—भूतानांहि क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वस्यमेतत् ।

[इन्द्रियों के शिथिल हो जाने पर उन्हें सान्त्वना देना ही अधिक आवश्यक है ।]

११—मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्ति चेतः
कण्ठा श्लेष प्रणयिनि जने किंपुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

[जो सुखी हैं उनका चित्त भी बादलो को देखकर स्थिर नहीं रहता, फिर जो विरही दूर बैठे हैं उनकी तो बात ही क्या है ।]

१२—मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ २८ ॥

[मित्र का कार्य करने की प्रतिज्ञा से बद्ध व्यक्ति कार्यपूर्ण न होने तक शिथिल नहीं पड़ता ।]

१३—याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

[सज्जन से निष्फल याचना भी अच्छी, नीच से सफल याचना भी अच्छी नहीं]

१४—सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ॥ १९ ॥

[सत्पुरुषों के साथ किया गया स्नेह अविलम्ब ही फल देने वाला होता है ।]

१५—रिक्तः सर्वोभवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय

[खोखलापन लघु बना देता है और पूर्णता गौरव प्रदान करती है।]

१६—सीमन्तिनीना कान्तोदन्त' सुहृदुपगतः सङ्गमात्किंचिदूनः

[विरहिणी के लिये किसी मित्र के द्वारा प्राप्त प्रेमी का समाचार भी मिलन सुख से कुछ ही कम होता है।]

१७—स्त्रीणामाद्य प्रणय वचन विभ्रमोहि प्रियेषु ॥ २८ ॥

[कामिनियों की प्रारम्भिक रसपूर्ण बातें ही प्रणयीजनों मे विभ्रम उत्पन्न कर देती हैं।]

१८—स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वसिनस्तेत्वभोगात्
इष्टेवस्तुन्युपचितरसा· प्रेमराशी भवन्ति ॥ उ॰ ४९ ॥

[जहां विरह के क्षणो मे अभोग के कारण स्नेह शिथिल पड जाता है, वहीं अभीप्सित वातावरण में रस से सिंचित होकर प्रेम लहलहा उठता है।]

—:X:o:X:o:X:—

कालिदास कृत मेघदूत के कुछ अनुवादों की तालिका

परिशिष्ट (ख)

बँगला

०	मेघदूत—	काव्यानुवाद—	अनुवादक	जगदीश्वरगुप्त, कलकत्ता, १८८५.
०	,,	,,	,,	किशोरी मोहन सेनगुप्त कलकत्ता, बसक प्रेस, १९०३.
०	,,	,,	,,	क्षितिनाथ घोष, कलकत्ता, १९५२
०	,,	,,	,,	नरेन्द्र देव, कलकत्ता, १९४३
०	,,	,,	,,	निताईचन्द सील, चिनसुरा, १९१० राजनारायण लाहा ?
०	,,	,,	,,	प्राणनाथ पण्डित, कलकत्ता १८७२ मुद्रक-कालीकिकर चक्रवर्त्ती
०	,,	,,	,,	रघुनाथ सुकुल, कलकत्ता बनर्जी प्रेस, १८७९
०	,,	,,	,,	राजकृष्ण मुखर्जी, कलकत्ता संस्कृत प्रेस डिपाज़िटरी, १८८२
०	,,	,,	,,	सतीश चन्द्र रे, कलकत्ता एस० सी० मजूमदार, १९०६
०	,,	,,	,,	सतीश चन्द्र सेन, गोपालपुर हेमन्द्र राय - १९१३

० मेघदूत काव्यानुवाद अनुवादक सत्येन्द्रनाथ ठाकुर, कलकत्ता
विक्टोरिया प्रेस

० ,, ,, ,, वरद चरण मित्र कलकत्ता, १८९३

० ,, ,, ,, महेशचन्द्र भट्टाचार्या, कलकत्ता
छात्र पुस्तकालय, १९३८

० ,, ,, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर

० ,, ,, सत्येन्द्रनाथ ठाकुर

० ,, ,, प्यारी मोहन सेनगुप्त

चीनी (Chinese)

० मेघदूतम् — चीनी (Chinese) में अनूदित, पेकिंग-१९५६

डेनिश (Danish)

0 Skybudet, en indisk Elegi. Metnisk oversat . of
P. Marcussen. Kjebenhavn, 1882

(स्कीबुदेत एन इनदिस्क एलेगी मेतरिस्क ओवरज़न......ऑफ
पी० मरकुसेन - क्षेवनहावन - १८८२

(मेघदूत - भारतीय कविता – मरकुसेन का पद्यानुवाद)

अँगरेजी (English)

० द क्लाउड मेसेंजर (the cloud messenger) अनुवादक-चार्ल्सकिंग
(charlsking)
(विज़डम ऑफ द ईस्ट सिरिज़) लंदन, जॉनमेरी, १९३०

० मेघदूत - अँगरेजी गद्यानुवाद अनुवादक- एच ए. ऑडवरी लंदन, १८६८

० ,, संक्षिप्तनोट एवं टिप्पणियों सहित-अँगरेजी काव्यानुवाद अनुवादक एच एच विलसन (फोर्ट विलियम कॉलेज की स्वीकृति पर १८१३ मे, कलकत्ते से प्रकाशित)

मेघदूत — अनुवादक — (लंदन से १८४३ में द्वितीय संस्करण)

„ — „ — तृतीय संस्करण, (एफ. जॉनसन के शब्द-कोष सहित १८६७ में लंदन से प्रकाशित) एवं १८६८ में श्री केदारनाथ तारकरन्त द्वारा कलकत्ते में सम्पादित।

o „ — „ — टी. क्लार्क, लंदन, १८८२

o मेघदूतम् — „ — के० बी० पाठक

(अँगरेजी टिप्पणियों सहित) द्विनीय संस्करण-पूना-१९१६

o „ (अँगरेजी टिप्पणियों सहित) अनुवादक मोरेश्वर रामचन्द्र काले, बम्बई, १९१६

o मेसेञ्जर क्लाउड (Messenger Cloud)—(अँगरेजी काव्यानुवाद, प्राचीन भारतीय कव्य की अनुकृति के रूप मे) अनुवादक-आर. टी. एच. ग्रिफिथ इलाहावाद-१९१४

(Cloud messenger) अनुवादक विल्सन Wıntrnuse Vol III

क्लाउड मेसेंजर

फ्रेञ्च (French)

o मेघदूत — Le Nuage Messager.........Traductıon Francaıce Par A Guerınat, Parıs, Le-puy-en-velay (Prınted), 1902

o मेघदूत — Le Nuager Messager (Meghaduta) Poeme, Tradnıt du Sanscrıt d 'apners l, explıcatıon de I' E Faucaux

(Vırgılus Maro (Publıus), Vırgıle et Kalıdasa, Les Bucolıgues et Le Nuage Messeuger, Traduıts en Vers, etc Parıs 1866)

o ल नु आज मेसाजे—त्रदुक्स्यो फ्रांसेज पार ए गेरिनो-पेरिस (मेघदूत गेरिनोकृत फ्रासीसीं अनुवाद

o ल नु आज मेसांजे पोएम त्रादवी दु सस्क द् प्रे - सेक्स प्ली
कासिओं द पी० ई० फुको
(मेघदूत, कविता, पी० ई० फुको की व्याख्या के अनुसार
सस्कृत से अनूदित)

GERMAN

o Kalıdas's Wolkenbte Ubersetzt...... .... Vonc sehutz
Bıelefeld, 1859

o Meghaduta, das ıst der Wlkenbote. .Aus dem sankrıt
metrısch Ubersetzt Von L. Frıtze.
Chemnıtz, 1879

o Meghaduta, Oder der Walkenbote ....eıne altındısche
elegıe, dem K. nachgedıchtee Und mıt
Anmcr kungen beglcıtet Von M Muller
Konıgsherg—1847

जर्मन

Kalidas, वॉलकनवोतं यूवरज़ेत्स······फॉन सी शुत्स बी० ले०
फेल्द १८५९.
(कालिदास कृत मेघदूत सुत्स द्वारा अनूदित)

मेघदूत दस इस्त डेअर वॉलकनबोते······आउग डेम संस्कृत मेत्रिश
यूवरज़ेत्स—फॉन, एल फ्रित्से, चेम्नित्स १८७९.
(मेघदूत—फ्रित्से का संस्कृत से काव्यानुवाद)

मेघदूत ओडेरडेर वाल्कनवोते आइने अल्थ इन दिश एलेगी डेम कालिदास
नहगेदिश्तेत-उन्थ मिथ अनमेर कुनगन वेग्लाइतेन फॉन एम
मिलर, कोनिक्सवर, १८४७.
(मेघदूत -- प्राचीन भारतीय कविता का मैक्समूलर द्वारा
सटिप्पणी पद्यानुवाद)

Italıan

Meghaduta O La Nube Messaggera Tradatto da Gıounı
Flechıa (Wıth a note on the geography of

the poem, by F L pulle). (Studı Italıanı dı Fılologıa Indo-Iranıca etc. Vol I-III 1879, etc.) Flonence, 1879-1899.

इटैलियन

मेघदूत ओ ल लुब्रे - मेसाजेरों, त्रदत्तो द् जिअवन्नी फ्लेक्किया (जिअवन्नी का अनुवाद)

Swedısh

Malnbudet (Meghaduta) Ett ıudıskt skuldestycke......... Fram Sanskrıt Frıth of versatt sant helyst of H. Edgren. Malmo, Gatebarg, 1875.

स्वेडिश

मॉलनबुदेत—एट इन दिस्क्त स्कालदेस्तिक ····फ्रान संस्कृत फ्रिथ ऑफ फर ज़ाथ, ज़म्थ, बोलिस्त ऑफ एच एद्ग्रेन, मालमो गते गर्ग १८७५.

(मेघदूत-भारतीय कविता-अनुवाद और टिप्पणी, एच० सद्ग्रेन.)

हिन्दी

० मेघदूत	अनुवादक	नागार्जुन, राजप्रकाशन-पटना, १९५५
० मेघसदेश	,,	सत्यकाम विद्यालंकार, राजपालएण्ड सस दिल्ली १९५६

कन्नड़

० मेघसन्देश	,,	सुब्रह्मण्यशास्त्री, शिमोगा कनटिक संघ १९३१
० ,,	,,	एस. व्ही. परमेश्वर भट्ट, शारदा मन्दिरमैसूर १९५०

मलयालम

० मेघदूत	,,	ए. आर, राजराजा वर्मा, कमलालय बुकडिपो त्रिवेन्दरम् १९५०

० मेघसन्देशम्   ,,   कुट्टीकृष्ण मरार, कोभ्कीकोडे, मद्रुभूमि १९५३

मराठी

० मेघदूत (संक्षिप्त) ,,   श्रीराम गोसेवी, वोरा एण्ड कम्पनी लि० वम्बई, १९५६

० ,,   ,,   सी. डी. देशमुख, जनराज प्रकाशन-पूना १९५२

० ,,   गणेश निल्कनाथ कातरे द्वारा भूल संस्कृत के छन्दों मे हीं मराठी मे अनूदित तथा उन्ही द्वारा कोल्हापुर से प्रकाशित—१९५५

० ,,   काव्यानुवाद   अनुवादक कुसुमराज, पॉपुलर वुकडिपो-वम्बई-१९५५

उड़िया

० ,,   ,,   राधामोहनगदानायक, उत्कलवुक एजेंसी कलकत्ता १९५३

तेलगु

० मेघसन्देशम्   काव्यानुवाद   अनुवादक   दामेरा राजगोपाल राव १९५२

Tıbetan

Dıe Tıbetısche ubersetzung Vou Kalıdas as Meghaduta Nuch deu Roten bud schwarzen Tanjur heransgegeben and ıns deutsche ubertragen Von Hermanu Beckh (Aus deu Anhang zu deu Abhand Lungen d kgl Preuss, Akademıe d Wıssenschofttn Von Jahre, 1906) Berlın Verlag der Konıgl, 1907
(In tıbetan serıpt.)

वंगला-हिन्दी-ॲंगरेजी

० मेघदूतम्   (सम्पादिन) गुरुनाथ भट्टाचार्य एवं कालिपद तारकाचार्य द्वारा हिन्दी एवं वगाली मे अनूदित एव अँगरेजी मे (काव्यानुवाद एच एच, विलसन द्वारा अनूदिन कलकत्ता-१९३४

—०.*.०—

दूतकाव्य-नामावली

परिशिष्ट (ग)

पुस्तक का नाम	कवि का नाम
१. इन्दु दूतम्	विनय विजयाग्नि
२. उद्धव दूतम्	माधव शर्मा
३. उद्धव सन्देश	रूप गोस्वामी
४. कीर दूतम्	राम गोपाल
५. कोकिल सन्देश	उदण्डकवि (१५ वीं शताब्दी)
६. कोकिल सन्देश	नृसिंह
७. कोकिल सन्देश	वेंकटाचार्य
८. चकोर सन्देश	अज्ञात
९. चन्द्र दूत	कृष्णचन्द्र तरकालंकार
१०. चन्द्रदूत	जम्बू कवि
११. चन्द्र दूत	विनय प्रभु
१२. चातक सन्देश	अज्ञात
१३. चेतो दूत	"
१४. जैन मेघदूत	मेरुतुग (१५ वीं शताब्दी)
१५. तुलसी दूत	वैद्यनाथ (१८ वीं शताब्दी)
१६. नेमिदूत	विक्रम कवि
१७. पदांक दूत	कृष्ण सार्वभौम (१७ वीं शताब्दी)
१८ पवन दूत	धोई (१२ वीं शताब्दी)
१९. पवन दूतम्	सूरी वेदीचन्द्र (१७ वीं शताब्दी)
२०. पन्थ दूत	भोलानाथ
२१. पिक दूतम्	अज्ञात
२२. पिक सन्देश	दाधीचि ब्रह्मदेव शर्मा
२३. भक्ति दूत	काली प्रसाद
२४ भृंग सन्देश	वासुदेव
२५ भ्रमर दूत	रुद्र

२६ मनोदूत	विष्णु दास
२७. मनो दूत	त्रैलंग व्रजनाथ (सं० १८१८)
२८. मनोदूत	रामाराम
२९. मनो दूतिका काव्य	अज्ञात
३० मनो दूत	"
३१ मयूर सन्देश	रंगाचार्य
३२ मेघदूत	कालिदास
३३. मेघदूत	मंत्री विक्रम
३४. मेघदूत समस्या लेख	मेघ विजय
३५. रथाग दूत	अज्ञात
३६. विप्र सन्देश	लक्ष्मण सूरि
३७. शील दूत	चरित्र सुन्दराग्नि
३८. शुक दूतम्	यादवचन्द्र
३९. शुक सन्देश	लक्ष्मी दास
४०. शुक सन्देश	करिंग पल्लि
४१. शुक सन्देश	रगाचार्य
४२. सिद्ध दूत	अवधूत राम
४३. सुगम सन्देश	नारायण
४४. हंसदूत	रूप गोस्वामी (१६ वीं शताब्दी)
४५. हस सन्देश	वेंकटेश
४६. हस सन्देश	भट्ट वामन
४७. हंस दूत	रघुनाथ दास
४८. हस सन्देश	अज्ञात
४९. हंस दूत	कविन्द्राचार्य सरस्वती
५०. हृदय दूत	भट्ट हरिहर
५१. बात दूत	कृष्णनाथ

— . o.*.—

मेघदूत

(कालिदास—राजा लक्ष्मण सिंह—'पूर्ण')

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।१।

कारज मे उनमत्त भएँ एक जच्छ दई सब खोय बडाई ,
जोय ते दूर रहे बरसेकलौ सौंह बडी निज नाथ खवाई ,
जाय बस्यो गिरि राम के आस्रम रूख घनेन मे गेह बनाई ।
जानकी स्नानन पुन्य प्रताप भई जहँ नीरन मे पविताई ।

—लक्ष्मण सिंह ।

करि मद अधिक अधिकार मे, इक जच्छ प्रभु के साप सो,
ह्वै वाम–विरही बरस हित, महिमा रहित दुख दाप सो,
द्रुम सघन छाया राम गिरिवर धाम मे निवसन गयो,
श्री जनकजा मज्जन प्रभाव पवित्रजल जहँ ह्वै रह्यो ।

—पूर्ण ।

यक्ष —देवयोनिविशेष ।

विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नरा ,
पिशाचो गुह्यक सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय ।

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः
आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीड़ापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श। २।

वसि ताहि महीधर में बिरही कितनो एक मास बिताइ गयो,
भुजबंद गयं गिर मोरन के इतनो थकि दूबर गात भयो,
फिरि लागत मास असाढ लख्यो घन सैल पै सोहनो आइ छयो,
भुकि कै मनहु गजराज वली गढढावन खेल मचाइ रह्यो।

—लक्ष्मण सिंह।

तह कछुक मास बिताइ अति दुख पाइ विरह प्रचंडसों,
गिरि गो कनक भुजबंद जाके दूबरे भुजदंडसों,
आसाढ पहिले द्योस देख्यो, सैल पै घन तेहि घनो,
भुकि गढ गिरावनहार सुंदर तुंगवर कुंजर मनो।

—पूर्ण।

प्रथम दिवसे—पाठान्तरे 'प्रशमदिवसे'।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे। ३।

तिहि केतकी फूल फुलावनहार के सन्मुख दास कुबेर गयो ;
उर अन्तर में अँसुआ भरिकैं बडी बेर लौ सोचत ठाढो रह्यो ,
चित कण्ठ लगे सुखियानहु कौ न रहै थित देखत मेघ नयो ,
फिरि बात कहा उनकी कहिये जिन मीत से दूर बसेरौ लयो।

—लक्ष्मण सिंह।

अभिलाख सौ वा मेघ आगे, जच्छ ज्यौं त्यौं भौ खरौ,
बडिबेर आसुन बेग रोकत, सोक सागर सो भरौ ,
कछु की कछू ह्वै जात है, घन जोय सयोगिन दसा ;
कह गति बियोगिन की जिन्है सालति मिलन की लालसा।

—पूर्ण।

कौतुकाधानहेतु —पाठान्तरे 'केतकाधानहेतु'— केतक्या गर्भाधानस्य कारणम् इत्यर्थं ।

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ।४।

सावन आइ समीप लख्यो नव नारि के प्रान बचावन काज,
बादर दूत बनावन कौं कुसलात सँदेस पठावन काज,
कूटज फूल नए कर लै मन कल्पित अर्घ बनावन काज,
बोलि उठ्यो हँसनो मुख ह्वै वह मेघ ते प्रीति बढ़ावन काज।

—लक्ष्मण सिंह।

नियरात सावन जानि सोच्यो नारि जीवन के लियै,
सँदेस अपने छेम को यहि मेघ द्वारा भेजियै,
बनमालती के फूल नीके लै अरघ दै नेम सौं,
मुद मानि स्वागतबानि बोल्यो बारिधर प्रति प्रेम सौं।

—पूर्ण।

जीमूतेन—जलधरेण।
अर्घ—आप क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुला
यवा सिद्धार्थकश्चैव अष्टाङ्गार्घ्यं प्रकीर्तितम् ॥
अपिच,
गन्धबिल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधिदूर्वाकुशैस्तिलैः
सामान्य सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्तितः ।
'प्रत्यासन्ने नभसि' पाठान्तर 'प्रत्यासन्ने मनसि'।

धूमज्योतिः सलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।५।

घाम धूम नीर औ समीर मिले पाई देह,
ऐसो घन कैसे दूतकाज भुगतावैगो।
नेह को सँदेसो हाथ चातुर पठैबे जोग,
वादर कहो जू ताहि कैसे कै सुनावैगो।
बाढ़ी उतकठा जच्छ वुद्धि बिसरानी सब,
वाही सो निहोर्यो जानि काज करि आवैगो।
कामातुर होत है सदाई मतिहीन तिन्है,
चेत औ अचेत माँहि भेद कहा पावैगो।

—लक्ष्मण सिह।

कह बापुरो घन धूम पावक पवन जलमय सर्वथा ?
कह चतुर धावन सो पठावन जोग प्रेमिन की कथा ?
इतनिहु बिथाबस जाचना कीन्ही जलद सो याचना,
चेतन अचेतन भेद देत भुलाय मनमथ यातना।

—पूर्ण।

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा। ६।

पुष्करावर्त्तक हैं प्रसिद्ध लोकलोकन में,
वंस तिनही के नीके तैं ने जन्म पायो है।
इच्छारूप धारन की गति हू दई ने दई,
मन्त्री सुरराजहू ने आपनो बनायो है।
एते गुन जानि तो पै मँगिता भयोहूँ मेघ,
बन्धुन तें दूर मोहि विधि ने बसायो है।
सज्जन पै माँगनो बिनाहू सरे काज भलो,
नीच पै सरेहू काज आछो ना बनायो है।

—लक्ष्मण सिंह।

पुष्करावर्त्तक विदित के वरवंस को अवतंस तू,
है कामरूपी इन्द्र को मंत्री प्रसिद्ध प्रसंस तू।
सो मैं वियोगी भाग्यवस गुनवंत गुनि तोहि जाचहू,
माँगेहु गुनी ना देहि तौ भल, भल न खल तें लाभ हू।

— पूर्ण।

पुष्करावर्तकाः—पुष्करा नाम ते मेघा बृहन्तस्तोयमत्सराः।
पुष्करावर्तकास्तेन कारणेन ह शब्दिताः।
मघोनः प्रकृतिपुरुषं—इन्द्रस्य प्रधान पुरुषम्।

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
संदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या। ७।

तू तौ है सहाई तनताप के सताएन कौ,
भयो हूँ वियोगी मैं कुबेर कोप पाइ कै।
छेम को सँदेसो याते मेरी प्रानप्यारी पास,
अलकापुरी मे मीत दीजो पहुँचाइ कै।
देखन ही जोग आछी नगरी बनी है वह,
लीनो जच्छराजन सुवास जहाँ आइ कै।
बागन मे बाहरें विराजें चन्द्रचूड जा के,
नित्त ही अटान रहे चदछटा छाइ कै।

—लक्ष्मण सिह।

तू है सरन दुखियान कौं, मैं हौ दुखी प्रभु कोप सो,
प्यारी निकट सदेस मो, लै जाहु अलका चोप सो।
सो राजधानी है धनद की धाम तह उज्जल लसैं,
लहि चादनी सिवचन्द्र की जो बाग मे बाहर बसैं।

—पूर्ण।

सतप्तनाम्—आतपेन वा प्रवासविरहेण वा सज्वरितानाम्।
धनपति—कुबेर।

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः।
कः संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः। ८।

वातपथ जात तोहि नारी परदेसिन की,
देखैगी वार वार अलकें कर सो उठाइ।
वाल्म के आवन की आसा उर लाइ लाइ,
धीरज धरगी नेक चिता जिय सो विहाइ।
आए तो समीप कोऊ नारी को विसारैं नाहि,
विरहाविथा में नर जोपैं अपनी वसाइ।
ऐसो मदभागी मैं हौं दूसरो न और होइ,
पराधीनवृत्ति हेत वैठो ही सुख नसाइ।

—लक्ष्मण सिंह।

धरि धीर तीच पथीन की विसवास आस वढाइ कै,
तोहि व्योम वीच विलोकि है अलकावलीन उठाइ कै।
तोहि पाइ रैहै भूलि को निज वाम विरहिनि दीन की,
होवै न परआधीन जो मो सम परमदुख लीन सो।

—पूर्ण।

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः। ९।

मद मद मारुत बहै जैसो तोहि सुहाइ,
हरखित यह चातक मधुर बाँए बोल्यो आइ।
बगुली हू नभ मे सुभग आईं बाँधि कतार,
गरभदान समरथ समुझि तोहि देन मनुहार।

—लक्ष्मण सिह।

अनुकूल मारुत मजु ज्यो तोहि मन्द मन्द चलावही,
तुव बाम दिसि यह मत्त चातक मधुर सब्द सुनावही।
सुभ जानि गर्भाधान उत्सव बक बधूटिन की अली,
हे नयन रजन गगन मे सेवा करैगी तुव भली।

—पूर्ण।

सगन्ध—पाठान्तरे सगर्व 'सहर्ष' इत्यर्थ (श्यामसुदर दास द्वारा सपादित प्रति में)।

चातक—बर्हिणश्चातकाश्चाजा ये च पुसाङ्गिता खगा।
मृगा वा वामगा हृष्टा सैन्यसम्पद् बलप्रदा।

गर्भाधानक्षण परिचयात्—पाठान्तरे 'गर्भाधानक्षम परिचयात्, (श्यामसुदर दास द्वारा सपादित प्रति मे)

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि । १० ।

मग में रुके न तू कहूँ लखिहै भौजी जाइ,
जीवनि दिन गिननी करत पतिभरता चितलाइ ।
नेही हिरदय नारि को कोमल जैसो फूल,
विरह माँहि आसा करनि नाहि कछुक दृढमूल ।

—लक्ष्मण सिंह ।

भाभी तिहारी हे सखा ! नारी हमारी जो सती,
तेहि अवसि लखिहौ कामचर ! दिन गिन विरह के जीवती ।
इक आस राखति रोकि कै बिरहिनि तिया के प्रान को,
प्रेमानुकूल सपूल तन नसि जाय फूल समान सो ।

—पूर्ण ।

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आ कैलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः। ११।

छत्रवती छिति को करति उच्छलिघ्र उपजाइ,
सो गरजन तेरी सुनत राजहस हुलसाइ।
मानसरोवर चलन को कमलनाल लै पाथ,
उडि है धुर कैलास लौ गगनपथ तो साथ।

—लक्ष्मण सिह।

जो करत छित को सफल, छत्रक छाय सरस उछाह कै,
सोई सुहावन सोर तुव सुनि मानसर की चाह कै,
लैकै कलेऊ कज कोपल राजहसन की अली,
कैलास लौ आकास मे करिहै सखा सगति भली।

—पूर्ण।

उच्छिलीन्घ्रामवन्ध्या—पाठान्तरे 'उच्छिलीन्ध्रातपत्रा' 'शिलीन्ध्र एव छत्र यस्या ताम्' इति अर्थ (श्यामसुदर दास द्वारा सपादित प्रति मे)।

बिसकिसलयच्छेद पाथेयवन्त —मृणालाग्राणा छेदै शकलै पाथेयवन्त ।

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् । १२ ।

मांगि मीत गिरितुंग पै अब मीतहि भरि अंक
पावन रघुपति-चरण सों अंकित जाको लंक ।
जब जब तू या ते मिलत बहुत दिनन मे आइ,
प्रीति प्रगट तो मे करत ताती भाप उठाइ ।

—लक्ष्मण सिंह ।

श्री राम पद के अंक है अभिराम जाके लंक मे,
यहि शैल को गुनि मीत बोलहु प्रीति सो भरि अंक मे ।
प्रति वर्ष ये तोहि पाय पूरन प्रेम नेम जनावही,
दीरघ विरह सताप सो सतप्त अस्रु वहावही ।

—पूर्ण ।

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
संदेशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्त्रोतसां चोपभुज्य। १३।

गैल बतावौ मेघ अब जिहि चलि पावै चैन,
फिरि सुनियो सदेस मम कानन अति सुख दैन।
कानन अति सुख दैन थके वा मग मे जब तू,
चलियो धरि धरि पाव सिखर ऊँचिन पै तब तू।
भूख लगे सोता मिलै उथरे अरु बिन मैल,
पी तिन कौ पानी तुरत लीजो अपनी गैल।

- लक्ष्मणसिह।

सदेस निज पीछे कहौंगो जोग स्रवनन पान के,
घन प्रथम पथ बताइहौ जो जोग तेरे जान के।
तेहि गैल मे बिसराम को है ठाम सैल सिखान के,
तिमि छीनता मे सलिल भोजन विमल वर सरितान के।

—पूर्ण।

चोपभुज्य—पाठान्तरे 'चोपयुज्य' (श्याम सुदर दास द्वारा सपादित प्रति मे)।

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ।
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान् । १४ ।

जात तोहि ऊपर निरखि कहिहैं सीस उठाई,
मुग्धा सिद्धवधू चकित आपस में बतराइ ।
आपस मे बतराइ बडो अचरज को लेखो,
पवन उडाये जात खड परवत को देखो ।
निचुलसरस यहि भूमि तजि अब उत्तर चलि भ्रात,
मेटत मद दिग्गजनके के नभमारग मे जात ।

—लक्ष्मणसिह ।

गिरिशृ ग लीन्हे जात मारुत सोचि यों ऊपर चितै,
चकि सिद्धरमनी मोहि तुव उत्साह देखैगी हितै ।
चढि यहि सुहावन बेतथल सो जाहु हे घन उत्तरै,
दिसि कुजरन की पीन सु डन को दरप जासो हरै ।

- पूर्ण ।

हरति—पाठान्तरे 'वहति' (श्यामसु दर दास सपादित प्रति में) ।
सरसनिचुलात्—आर्द्रस्थलवेतसा यस्मिन् तस्मात् ।
दिङनागाना—दिग्गजाना ।

ऐरावत पु डरीकोवामन कुमुदोऽञ्जन,
पुष्पदत सार्वभौम सुप्रतीकश्च दिग्गजा ।

अवलेपान्—गर्वान् ।

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता-
द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः।१५।

सोहत पूरब ओर यह रतनजाल अनुमान,
बिकसत बाँबी ते भलो इन्द्रचाप रुचदान।
इन्द्रचाप रुचदान जासु मिलि तौ तन कारो,
पावत है छबि अधिक लगत नैनन को प्यारो।
मोरचन्द्रिका सग सुभग जैसे मन मोहत,
गोपभेस गोबिद बहुत स्यामल तन सोहत।

—लक्ष्मण सिह।

सुदर सरासन पाक सासन को सुहावन सामने,
यो लसत बाँबी सो निसरि ज्यो मनिन के रग मिलि घने।
तेहि सो सजैगो रावरो बपु साँवरो सोभा सनो,
मनु मोर पखन ओप सो हरि गोप भेस सुहावनो।

—पूर्ण।

आखण्डलस्य—इन्द्रस्य।

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किंचित्पश्चाद्व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण। १६।

करिके दृग ऊचो लखै भोरे भरे पियार,
ग्रामवधू तुहि जानिके खेती फल दातार।
खेती फल दातार पहुँचियो मालभूमि पर,
नये जुते जह खेत सुगंधित होइँ अधिकतर।
कछु पच्छिम दिसि पलटि सीघ्र गति तन मे धरिकै,
चलियो जलधर मीत फेरि उत्तरमुख करिकै।

— लक्ष्मण सिंह।

तोहि जोवही भोरे दृगन जो भृकुटि भग न जानही,
सुख ऐन कृषि फल दैन तोको ग्राम वनिता मानही।
चढि हाल की जोती सुगन्धित माल नामी भूमि पै,
चलि कछु प्रतीची धाइयो हे घन! उदीची घूमि कै।

——पूर्ण।

त्वय्यायत्त—त्वयि आयत्त—ते अधीनम्।
भ्रूविलासानभिज्ञै—भृकुटिविलासानामज्ञातृभि।

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः। १७।

अम्रकूट तनताप मेटी तैं बहुधा वरसि,
सो धरिहै सिर आप तो मारग कै थकित को।
मीतहि आए द्वार विमुख होत नहि नीचहू,
सुमिरि प्रथम उपकार ऊँच विमुख कब ह्वै सकै।

—लक्ष्मण सिह।

जल बरखि दावानल समन को गुन तिहारो मानिकै,
निज सिर बसैहै अमरकटक सुमित तोको जानि कै।
नेकी सुमिरि कै देत नीचहु अतिथि आदर मीत कों,
किमि करहि फेरि अयोग ऊचे लोग तजिकै नीति कों।

—पूर्ण।

वनोपप्लव—दवाग्निम्।

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै—
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः। १८।

रह्यो चहूँ दिसि छाइ पके आम वन सैल जँह,
ता सिर जव तू जाइ वैठै चिक्कन चिकुर रँग।
तुरत लहै छवि सोइ जोग देवदम्पति लखन,
मनहु स्यामता होइ गोरे भूमि उरोज विच।

—लक्ष्मण सिह।

चिक्कन चिकुर लौं चारु तू जव सैल चोटी पै चढ़ै,
वन आमृपुजन कै षके अभिराम जह सोभा मढ़ै।
तव देवदपति लखन लायक लसै भूरि ललामता,
महि के मनोहर पीत कुच के वीच मानो स्यामता।

—पूर्ण।

अमर मियुन प्रेक्षणीया—खेचरदम्मती दर्शनीयाम्।

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगत सानुमांश्चित्रकूट—
स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाघमानः।
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निं
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु। १९ अ।

थक्यो पथ चलि गात निकट रहै जब जाय तू,
चित्रकूट विख्यात ऊँचे सिर तोहि धारि है।
करियो धारासार हरन तासु ग्रीसम अगिनि,
सज्जन सग उपकार फलत विलब न कछु करै।
—लक्ष्मण सिह।

नैदाघम्—निदाघर्तुभवम् (निदाघ ग्रीष्म.)।

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य।१९।

बिलमि तहा कछु वार विहरनि जह वनचर–बधू,
करियो बारासार फिरि द्रुतगति मग लाघियो।
लखियो रेवा जाइ विन्ध्यमिलन पै यो बहै,
मानहु दई रचाइ गजतन रजरेखा विसद।

—लक्ष्मण सिंह।

जेहि कुंज विहरैं वनचरैं तहँ नेक वार विहार कै,
बरसाय जल हलुकाय, आगे जाय मारग पार कै।
पाहन विसमथल विन्ध्यतल रेवा विपुल धारावली,
लखियो मतगज अंग जनु सृंगार की रेखावली।

—पूर्ण।

रेवा—नर्मदा,

रेवातु नर्मदा सोमोदभवा मेकलकन्यका—इत्यमर।

भक्तिच्छेद—रेखारचना।

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।
अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय। २०।

लै चलियो वा नदि कौ नीरा। जमुनी कुञ्जन रुकि ह्वै धीरा।
बन–हाथिन जिनमे मद त्यागे। अधिक सुगन्धित तिन हित लागे।
अन्तर जब तेरौ भरि जाई। पवनहु रोकि न तोहि सकाई।
रीते सबहि तुच्छ जगमाही। बिन पूरनता गौरव नाही।

—लक्ष्मण सिह।

बरसाय बारि सिधारियो पुनि धारि रेवा जल खरो,
जो रमत जामुनकुंज कुंजरपुंज तीछन मद भरो।
भीतर भए ते सार मारुत भार तू सहजहि सहै,
छूछो सदा लघु होत है, पूरो बडाई कौ लहै।

—पूर्ण।

तिक्तैं—सुगन्धिभि ।
वासितम्—सुरभितम्।
प्रतिहतरय—प्रतिरुद्धो वेगो यस्य तत्।

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।
जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्। २१।

देखि कदम्ब सुमन मनभाये, हरित स्याम मकरन्द सुहाये,
कूलन माहि निरखि कन्दलिका, नवकुसुमित बहु सुन्दर कलिका।
दावानल भस्मित कानन मे, भूमि सुगंध सूँघि मृद मनमे,
मोर जलद तोहि आदर दैहै, आगे उडि उडि पथ दिखैहै।

—लक्ष्मण सिंह।

नव कल्गित केसर, वलित, हरित, सुपीत, नीप निहारि कै,
करि भ्रमन वन कदलीन जो कलियाहि प्रथम कछार पै।
हे घन विपिन थल अमल परिमल पाय भूतल की भली,
मधुकर, पतग, कुरग वृ द जनाइहै तेरी गली।

—पूर्ण।

जग्ध्वारण्येषु—पाठान्तरे 'दग्ध्वारण्येषु' (श्यामसुंदर दास सपादित प्रतिमें)

सारङ्गा—पाठान्तरे 'शारङ्गा'।

अम्भोविन्दुग्रहण चतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यान्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि। २२ अ।

सिद्ध निरखि हे तो मँग आवत। चातक बारि बूँद रट लावत॥
बगपाँती एकसँग लखि लैहैं। गिनती करि करि तियनि दिखै है।
सो तिय सुनत घोर घन तोरी। काँपि चौकि अकुलायँ घनेरी॥
अक लगाय बलम सुख पावै। बहुभाँतिन तेरो गुन गावै॥

—लक्ष्मण सिह।

बूदी गहन मे चातकन की चातुरी चित चावसो,
दिखराइहैं गिनिहै अली बगुलीन की रसभाव सो।
ते सिद्ध सुनिकै घोर सोर अथोर जस तव मानिहैं,
भयलीन निज प्यारीन सभ्रम पाय मिस उर आनि है॥

—पूर्ण।

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे। मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान्गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २२।

यद्यपि मम प्यारी हित लागे। तू नहिं चलन मदगति त्यागे ॥
तदपि डरो कहुँ विलमि न जाई। ककुभ सुगंधित सैलन भाई ॥
मुनि आदरयुत वोल सिखिन के। सजल नैन कोये सित जिनके ॥
का विधि तुरत गमन होइ तेरो। इहि सका व्याकुल मनमेरो ॥

—लक्ष्मण सिंह।

ककुभसुरभि—अर्जुनसुगंधि।
केका —केका वाणी मयूरस्य।
प्रत्युद्यात —कृतातिथ्य।

९ ३ १ २ ४
उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
८ ६ ७ ५
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते।
११ १० १३ १२
शुक्लापांगैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
१४ १६ १५ १७ १८ १९
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान्गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २२॥

मम हेत करिहै तू उतावलि तदपि देहुँ चेतावनी,
रमिहै गिरिन तू मल्लिकन की लहि सुगध सुहावनी।
अँसुवा भरे मोरवान को सुनि सोर स्वागत दान को,
लहि मान हा! हा! भूलियो जिनि काज वेग पयान को।

—पूर्ण।

५ ४ ३

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-

७ ६ ८

नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।

१ ९

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः

११ १० २

संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥ २३ ॥

पहुँचि दसारन जब तूँ जाई , कछुदिन हंस बसैं तहँ भाई ।
कलित केतकी जहँ मन मोहैं , उपवन सीम पडुरँग सोहैं ।
नीड समय पछी बहु आवैं , रुखन माहिं कलोल मचावैं ।
स्याम बरन सुंदर दुतिमंता , जमुनीफल पकि भे बनअंता ।

—लक्ष्मण सिंह ।

सित केतकी कलियान सौं उद्यान ह्वैहैं छबिसने,
निज धाम रचि हैं ग्राम वृच्छन पुंज पच्छिन के घने ।
तोहि पाय जबू विपिन पाके फलन स्यामल छाजि हैं,
कछु दिवस बसिहैं हंस या विधि सो दसारन राजि हैं ।

—पूर्ण ।

त्वय्यासन्ने ··· वनान्ता —पाठान्तरे 'त्वय्यासन्ने फलपरिणतिश्याम
–जम्बूवनान्ता (श्याम सुन्दर दास सम्पादित प्रति में)
नीड —पक्षिगृहम् । दशार्णा =नामदेश ।

३ १ २ ४
तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
५ ६ ९ ८ ७ १०
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा ।
१८ १९ १२ ११
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मा-
१६ १७ १५ १४ १३
त्सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥ २४ ॥

बिदिसा नाम तहाँ रजधानी, देस देस बिख्यात बखानी ।
ता ढिग पहुँचि जबहि तू जैहै ; रसबिलास कौ अति फल पैहै ।
बेत्रवती तट गरजत धीरा । लीजौ मधुर तरंगित नीरा ।
मनुहुँ कुटिल भृकुटी युत मुखतें । अधरामृत लीन्यौ अति सुखतें ।

—लक्ष्मण सिह ।

है राजधानी ता दिसन जो विदित 'विदिसा' नामकी,
तहँ भोगिहै रूरी कला तूं सरस पूरी काम की ।
पीहै जबै करि धुनि मधुर जल वेतवन्ती को खरो,
भ्रुव भंग भूसित मुख समान तरंग रंजित रस भरो ।

—पूर्ण ।

गत्वा सद्यः फलमविकल—पाठान्तरे 'गत्वा सद्यः फलमति महत्'
(श्याम सुन्दर दास सपादित प्रति में)

फलमति महत्='कामिनामधरास्वाद सुरतादतिरिच्यते' इतिभाव ।

७ ८ १ २
नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
५ ६ ३ ४
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः
९ १० १२
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
१३ १५ ११ १४
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २५ ॥

है विदिसा ढिग 'नीच' गिरी करियो विसराम तहाँ घन जाइकैं ।
तोहि मिले लखिहै पुल्कात सो आछे कदव के फूलन छाइ कैं ।
वेस्यन के अँगराग की गध गुफान ते व्यारि के सग उडाइ कैं,
दैहै बताइ विहार करें इहाँ नागर छैल नए नए आइ कैं ।

—लक्ष्मण सिह ।

पुनि 'नीच' नामक सैल पै विसराम कीजो विधि भली ।
लहलहे नीपन सो मनो तोहि लहि लहै पुलकावली ।
तहँ कढि सुगध गुफान तें गनिकान के अँगराग की,
बरनै कथा स्वच्छन्द नागरवृन्द के अनुराग की ।

—पूर्ण ।

य पण्यस्त्री . . .नागराणा—पाठान्तरे 'य पण्यस्त्रीरति परिमलोद्वारिभिर्नागराणाम्' (श्यामसु दर दास सपादित प्रति में)
नीचैराख्य गिरिम्=नीचगिरिम् ।

१ ११ २ ६
विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च-
३ ५ ४
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ।
७
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
९ १० ८
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥ २६ ॥

ठैरि के नेक तहाँ चलियो बरसावत नीर नई बुँदियान तें,
सीचत नाग नदी तट बागन छाइ चमेली रही कलियान तें,
दै छिन छाँह को दान सखा करियौ पहिचानि तू मालिनियान ते,
कान के फूल गये जिनके कुम्हिलाइ से पोछत स्वेद मुखान ते ।

—लक्ष्मण सिह ।

उद्यान है सरितान तट तहँ मालती कलियान को,
सोचत सनेम सिधारियो, बरसाय नव बुँदियान को ।
पहिचानि कीजो छाँह त्यौ छिन मालिनिन मुख छाइ कै,
स्रुतिकमल जिनके स्वेद पोछन सो रहे कुम्हिलाइ कै ।

—पूर्ण ।

पुष्पलावी = पुष्पावचायिका

६ ४ ५ ३ २ १
वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
८ ९ ७
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।
१२ १० ११
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
१३ १५ १६ १४ १७
लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोसि ॥ २७॥

तो दिसि उत्तर चालनहार के मारग केतोहु फेर परे किन,
वा उज्जैनि के आछे अटा परसे बिन तू चलियो कितहू जिन।
चंचल नैन वहाँ अबलान के बिज्जुछटा चकचौंध करै छिन,
जो न लखै उन नैनन तू हकनाहक देह धरेही फिरै गिन।

—लक्ष्मण सिंह।

बंक परै मारग फेर उत्तरपथ तजै मति पै न ए,
मत मानियो झाँकि बिना बाँके अटा उज्जैन के।
नवनागरी के चख चपल तहँ चपला चमक सों चौंकहीं,
हे सखा! जीवनवृथा जो तू छटा सो देखै नहीं।

—पूर्ण।

उज्जयिनी स्याद्विशालाऽवन्ती पुष्पकरण्डिनी।

२
वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकांचीगुणायाः
४ ३ ५
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ॥
६ १ ९ ८ ७
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
१० १२ १३ १४ ११
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ २८ ॥

रस बीच मे लै चलियौ निरविन्ध को जो मग तेरो निहारती है,
कटि किंकिनि मानो विहगम पाँति तरग उठे झनकारती है।
मनरजन चालि अनोखी चलै अरु भौंर की नाभि उघारती है,
बतरान है मीत सो आदि यही तिय विभ्रम मोहनी डारती है।

—लक्ष्मण सिह।

कूजति तरगन सग हसावलि सजे सोइ किंकिनी,
निज भ्रमर नाभि दिखावही मदमत्त मदर गामिनी।
मग लीजियो रस तौन निर्विन्ध्या नदी को नेम सो,
है प्रथम करिबो भावही तिय को बतैबो प्रेम सो।

—पूर्ण।

निर्विन्ध्या = नाम नदी। विभ्रम = विलास।

१ १० ६ ११
वेणीभूतप्रतनुसलिलाऽसावतीतस्य सिन्धुः
३ २
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः।
८ ७ ४ ५ ९
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
१४ १२ १५ १३ १६ १७
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ २९ ॥

जल सूखत सिंधु भई पतरी तन वेनी सरीखो दिखावती है,
तट रूखन ते भरे पात पके छवि पीरी मनो अँग लावती है।
धरि सोहनो रूप वियोगिनि को वह तोमें सुहाग मनावती है,
करियो घन ! सो विधि वाके रूए तन छीनता को जो मिटावती है।

—लक्ष्मण सिंह

आकार वेनी के भई जलधार दुर्बल गात हो,
तन पीत तीर तरून के झरे झरे तहँ पात जो,
तव प्रेम-भाजनि सो दसा तुव विरह तापन सो लही,
करि वेग मेघ ! प्रवीनता सब छीनता हरियो मही।

—पूर्ण।

वेणीभूत ...... सिन्धु —पाठान्तरे 'वेणीभूतप्रतनुसलिला सामतीतस्यसिन्धु'। (श्याम सुन्दर दास सपादित प्रति में)
सिन्धु = नाम नदी। व्यञ्जयन्ती = प्रकाशयन्ती।

३ २ १

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्

४ ८ ७ ५ ६

पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।

१० ९ १२ ११

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां

१३ १४ १८ १५ १७ १६

शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कांतिमत्खण्डमेकम् ॥ ३० ॥

ख्यात है अवती जहाँ केतेक निवास करें,
पडित जनैया उद्दयन की कथान के।
जाइ के तहाँ प्रवेस कीजौ वा बिसाला बीच,
देखि लीजौ सोभा साज सकल जहान के।
भूमि ते गये जो नर देवलोक भोगिवे को,
करि करि काज वडे धर्म औ प्रमान के।
तेई फेरि आए सग सारभाग स्वर्ग लाए,
प्रबल प्रताप मनो सेस पुन्नदान के।

—लक्ष्मण सिह।

जहँ ग्रामगुरुजन है चतुर उदयन चरित चरचान मे,
जैयो अवन्ती प्रान्त में, उज्जैन स्री छवि खान मे।
जहँ अवनि आये जीव पावन पुन्य को फल बहु वितै,
फल सेस सो मनु स्वर्ग को इक खण्ड वर लाये इतै।

—पूर्ण।

अवन्तीम्=उज्जयिनीम्। उदयन=नाम राजा, वत्सराज इति प्रसिद्ध।
पूर्वोदिष्टा=पूर्वोक्ताम्। श्रीविशाला=सम्पत्ति महतीम्।
विशाला पुरी=उज्जयिनीम्।

७ ३ ४ ६ १

दीर्घीकुर्वन्पटुमदकलं कूजितं सारसानां

२ ८

प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।

१ १३ १५ १४ ९

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूलः

१० १२ ११

शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ३१ ॥

प्रात काल फूले नित्त कजन ते भेटि भेटि,
रजन हिये को होत गव सरसानो है।
दीरघ करत मदमाते वोल सारस के
सुरन रमीले सुनि कान सुख मानो है।
एते गुन साथ तात सिप्रा नदी को वात,
पीतम समान वीनती मे अति स्यानो है।
सुरत गलानि हरत साई तहाँ नारिन की
गातहितकारी जात याही ते वखानो है।

—लक्ष्मण सिह।

जो मद कलित धुनि मधुर पछिन की सरस सरसावही,
कुसुमित कमल परिमल वलित जो अग लगि हुलसावही,
सिप्रा पवन सो हरति रति की अरुचि प्रात तियान की,
जैसे विनय की वात मनुहारी पिया रसखान की।

—पूर्ण।

सिप्रा = शिप्रा नाम नदी।

५ ३ ४ ६ ७

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शंखशुक्तीः

८ १० ९

शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।

१४ १ २ १२ ११ १३

दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गा-

१७ १५ १६

न्संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥ ३२क ॥

उस विशाला नगरी की अनेक पण्यवीथिकाओ मे प्रसारित बीच मे गुँथेहुए महारत्नो से युक्त निर्मल हार, करोडो शङ्ख और सीपियाँ, घासकी तरह नीली और छिटकती हुई किरणो से सुशोभित मरकत मणियाँ तथा प्रवाल–खण्ड यह सकेत करते हैं कि समुद्र में केवल जल ही शेष रह गया है (उसकी समस्त रत्नराशि इस नगरी में एकत्र हो गई है)।

२ ३ ४ १ ५
प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
९ १० ८ ६ ७
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।
११ १५ १६ १२ १४ १३
अत्रोद्भ्रांतः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा-
२० २२ १९ १७ २१ १८
दित्याऽगन्तून्रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥ ३२ख ॥

यहाँ (उज्जयिनी के राजा) प्रद्योत की प्रिय पुत्री (वासवदत्ता) का (वत्स-राज) उदयन ने अपहरण किया था। उसी राजा (प्रद्योत) का सुवर्णमय तालवृक्षों का यहाँ एक वन था। यहाँ उनका नलगिरि (इन्द्रदत्त) नामक हाथी खंभे उखाड़ कर मद से मत्त घूमता था। इस कथा से परिचित विद्वान अन्यदेशों से विशाला में आये हुए अतिथियों का इस के द्वारा मनोविनोद करते है।

२ ३ १ ४
पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्द्धिनो यत्र वाहाः
५ ७ ९ ८ ६
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्।
१३ ११ १० १२
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
१५ १४
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥ ३२ग ॥

हे मेघ, उस विशाला नगरी मे पलाश वर्ण वाले घोडे रग और चाल मे सूर्य के घोडो से प्रतिस्पर्धा करते है। वहाँ शैल के समान ऊँचे हाथी मद स्राव के कारण तुम्हारी तरह वर्षा करते है। युद्ध मे रावण के सम्मुख खडे हो सकने वाले भटश्रेष्ट (रावण की तलवार) चन्द्रहास के आघात चिन्हो ही से आभूपणो की काति को भी निष्प्रभ करदेते है।

१ ३ २
जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
४ ५
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः।
८ ८ ६ ११ १२
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा
१० ७
लक्ष्मीं पश्यंल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३२ ॥

उड़त झरोखन नें केसगन्ध-धूप तहाँ
होई अंग ते ऐ पुष्ट मेघ वाहि पीजो तू।
देखि तोहि बारबार नाचिहैं घरेलू मोर,
प्रीति मनकार मीत सोई मान लीजो तू।
सोवे होई फूलन त मंदिर अवंतिका के
चैन थके गातन को नैक तहाँ दीजो तू।
ललित तियान पाँव रंजित महावर तें,
अंकित अटानि जाइ विसराम कीजो तू।

—लक्ष्मण सिंह।

निसरै झरोखन केसरंजन धूप तासो पीन ह्वै,
प्रेमी सिखिन के नृत्यमय उपहार सों सुख लीन ह्वै।
नवलान पग जावक कलित फूलन वलित महलान में,
घन! जोइयो सुखमा ललित, श्रम खोइयो मन आन में।

—पूर्ण।

जालोद्गीर्णै=गवाक्षमार्गनिर्गतैः।
केशसंस्कारधूपै=वनिताकेशवासनार्थैर्गन्धद्रव्यधूपैः।

१ २ ३ ४ ५
भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
८ १० ६ ९ ७
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
१५ ११ १३
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
१२ १४
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥ ३३ ॥

जाइयो तू फेर मीत पावन पुनीत ठाँव
चण्डेस्वर धाम तीन लोक अधिकारी के।
नाथ के गरे की छबि देखि अग तेरे माहि
आदर सो लेगे तोहि गण त्रिपुरारी के।
करैं जलकेलि नारि नागरि नवेली तहाँ
गधित है नीर गधवती सिधु प्यारी के।
नीरन ते मोद औ कमोदन ते लै पराग
पवन झकोरैं नित्त रूख बागवारी के।

—लक्ष्मण सिह।

सितिकठ कठ समान छवि सादर गनन दरसाइयो,
भगवत भवानीनाथ त्रिभुवनपति भवन को जाइयो।
तहँ बाग डोलहि कुमुद वासित 'गधवती' बातसो,
सुरभित जु मिलि जलकेलिरत नव नागरिन के गात सो।

—पूर्ण।

पुण्य यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य—पाठन्तरे 'पुण्य मायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डेश्वरस्य'

(श्याम सु दर दास सपादित प्रति मे)।

चण्डेश्वरस्य=चण्डाया ईश्वर, पार्वतीपति।

गधवती=नाम नदी।

४ २ १ ५ ३
अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले
११ १० ८ ६ ९ ७
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
१५ १४ १३ १२
कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
१६ १९ १८ २० १७
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥ ३४ ॥

मांझ के बिना जो कहूं पहुंचै तू और काल
महाकालजू के पुण्य आस्रम में जाइकै।
ठैर तहां लीजो ईस भानु रहे जौलों दीठ
दिवस उजारो रहै छिति छहराइ कै।
सध्यावलि पूजन जब होइ सूलधारी की
दुंदुभि की ठौर दीजो गरज सुनाइ कै।
मंद मंद घोस को पावेगो फल अखंड
ऐसे बरदायी देव-देव को रिझाइ कै।

—लक्ष्मण सिंह।

श्री महाकाल विसाल गृह पहुंचै जु तू औरहि समै,
तबलौं ठहरियो जलद! जबलौं नयन सन्मुख रवि रमै,
शिव अर्चना की दुंदुभी संग मधुर धुनि पुनि कीजियो,
गंभीर गरजनि आपनी पूरन सफल कर लीजियो।

—पूर्ण।

महाकाल = महाकालाख्यं स्थानम्।
आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम्।
मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवाप्नुयात्।
आमन्द्र = ईषद् गम्भीरम्।

२ १ ३
पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै
४
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ।
५ ६ ७ ९ ८
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
१२ १० ११
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ॥ ३५ ॥

नाचति नवेली तहाँ बेस्या अलवेली वाल
किंकिनी बजति पगधरत सुहावनी ।
रतनजडी डाँडिन के डोलति है ठाढी चौर
थकित भुजान करे लीला ललचावनी ।
जाइ नख रेखनि मे उनके परैगी जब
नई बूँद तेरी मेघ सुखसरसावनी ।
बडे से कटाच्छ तोपै भ्रमरावली समान
डारैगी सनेह भरे वेई मन भावनी ।

—लक्ष्मण सिह ।

किंकिनि बजै जिनकी नचत तहँ बार बाला सुदरी
कर थके जिनके सेइ कै चँवरै मनिन आभा भरी ।
नखछद सुखद तौ प्रथम बूँदन पाय तोहि निहारि है
अलिअवलि सी तीछन कटाछन की छटा विसतारि है ।

—पूर्ण ।

पादन्यासै क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै
पाठान्तरे 'पादन्यासै क्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै'
(श्यामसुदर दास सपादित प्रति मे)
आमोक्ष्यन्ते इत्यादि = आमद्राणा गर्जितानामिद फलम् ।

१ ४ ५

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मंडलेनाभिलीनः

८ ६ ९

सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।

३ १४ २ १३

नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां

११ १२ १०

शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्याः ॥ ३६ ॥

बाँधि फेरि मण्डल जब लेगो तू छाइ मीत,
लाँबी सी भुजान रूप ऊँचे रूखवारो वन,
फूल है जवा कौ नयो ता समान लाल रग,
तेज साँझ काल हू कौ धारि लेगौ कारे तन ,
नृत्य समै ओढ्यो चहै आलो गजचर्म नाथ
देखि तोहि भूलि जाइ ताकौ खरो प्यारोपन।
ग्लानि के मिटे ते स्वस्थचित्त ह्वै भवानी तोहि,
प्यार सो लखैगी आज हरग्यौ हमारो मन।

—लक्ष्मण सिह।

पुनि नव जवा सम साँझ की सुठि लालिमा सो छाजि कै,
भव भुजन के तरु तुग बन पै मजु मडल साजि कै,
गज चर्म गीले को पुजैयो नृत्यगत सिव कामना,
इकटक भवानी देखिहै मुदभाव सो यह भावना।

—पूर्ण।

प्रतिनवजपापुष्परक्त = पाठान्तरे 'प्रतिवनजवापुष्परक्त'

(श्यामसु दर दास सम्पादित प्रति मे)

नागजिनेच्छा हर = गजचर्म धारणेच्छा निवर्तय।

त्वमेव तत्स्थाने भवेति भाव ।

स्तिमित = निश्चलम्।

४ ३ ५ १ २
गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
८ ९ ६ ७
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ।
११ १० १३ १२
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं
१४ १५ १७ १६
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ॥ ३७ ॥

मीतके मदिर जात चली मिलिहै तहँ केतिक रात मे नारी
मारग सूझ जिन्है न परै जब सूचिकाभेद झुकै अँधियारी ।
कचनरेख कसौटी सी दामिनि तू चमकाइ दिखाइ अगारी,
कीजियो ना कहुँ मेह की घोर मरै अवला अकुलाइ विचारी ।

—लक्ष्मण सिह ।

तँह रैन मे रसियान गृह अभिसारिका गन जात है,
अतिअधकार अपार मे नहि राज पथ लखात है,
कचन कसौटी खचित सी छहराइयो छिति दामिनी,
पै गरजियो जनि वरसियो जनि भीरु है वे कामिनी ।

—पूर्ण ।

नक्त—पाठान्तरे 'रात्रौ' (श्यामसु दर दास सपादित प्रति में)
स्निग्धया—पाठान्तरे 'छायया' (,, ,,)

५ ४ ३
तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
७ ६ १
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः ।
९ ८ १० २ १२ ११
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
१६ १५ १३ १४
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ३८ ॥

थकि जायगी दामिनि तेरी तिया वहु वेर लौं हास विलास करे,
टिक रात में लीजियो काहू अटा जहाँ सोवत होइँ परेवा परे।
दिन ऊगत फेरि उतै चलियो जित मे चलिवे को रहै डगरे,
सोहतात कहाँ नर वे जग में जिन मीत के कारज साम वरे।

—लक्ष्मण सिंह।

वर विपुल विलसन सो स्रमित जिय जानि दामिनि भामिनी,
जहँ करत सयन कपोत तहँ छत पै वितैयो जामिनी।
पुनि गैल गहियो हे सखा! लहतहि दरस दिनराज को,
नहि करत मज्जन देर जिय में ठानि मीत सुकाज को।

—पूर्ण।

भवनवलभी=गृहाच्छादनोपरिभाग।

१ ५ ४ ३

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां

६ ७ २ ८ १० ९ १२ ११

शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ।

१६ १५ १३ १७ १४

प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः

१८ १९ २१ २०

प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ ३९ ॥

भोर भये बनिता खँडितान के मीत मिले अँसुवा पुछजात हैं,
छोडियो याते तुरन्तहि सो मग जा मग आवत भानुप्रभात है।
चाहत वेहु मिटावन को नलिनी-मुख ओस के आँसू दिखात हैं,
रोकियो ना उनकी किरने अनखाइ वडे अनखान की बात हैं।

—लक्ष्मण सिंह।

प्रियतम खण्डितान के आँसू पोछत भयो सबेरो,
तातो रवि को पथ तजन मे जनि कीजियो अबेरो।
नलिनी बदन ओस के अँसुवा पोछन सोऊ ऐहै,
रुकत देखि निज किरन चडकर तो पै अधिक रिसै है।

—पूर्ण।

प्रालेयास्र —पाठान्तरे 'पालेयाश्रु' (श्यामसुन्दर दास सम्पादित प्रति मे)
प्रत्यावृत्त —प्रत्यागत ।

५ ७ ६ ४
गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
३ १ ९ २ ८
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।
१० ११ १२ १८ १४ १७ १५
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्यां-
१६ १३
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥ ४० ॥

अति उज्जल नीर गँभीरा नदी निरदोस हिये के समान धरै।
मनभावन को प्रतिबिम्ब सुहावन ता जल जाइ परै ही परै।
फिरि का विधि होइगो जोग जु तूँ निठुराई सखा इतनी पकरै,
सफरी गति चंचल स्वच्छ सरोरुह बाँकी चितौनि निरास करै।

—लक्ष्मण सिंह।

चित्त समान निरमल जलवारी गभीरा सरि माँहो
परि है जब तव सहज छबीली सरसीली परछाँही।
कुमुदबरन मीनन उचकनि मिस तव वह चपल चितैहै,
ह्वै जैहै तूँ अवसि काम बस धरी धीरता रैहै।

—पूर्ण।

गम्भीरा = नामनदी। मोघी = निफली। सफर = मीन।
उद्वर्तनम् = उत्लुण्ठनम्।
शफरोद्वर्तन—पाठान्तरे 'सफरोद्वर्तन' (श्यामसुन्दर दास सम्पादित प्रति में)।

२ ४ ३

तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं

८ ६ ७ ५

नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।

११ १० १२ १ ९ १३

प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि

१४ १६ १५ १७

ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥ ४१ ॥

तटसो उठि वाको सलिल लग्यौ डार वानीर,
कर पकरत सरक्यौ मनौ कटि ते नीलो चीर ।
लिए ताहि कैसे बनै प्यारे तेरो गौन,
नगन जघन के तजन को रसिया समरथ कौन ।

—लक्ष्मण सिंह ।

नील नीर पट जब तब खैंचे तट नितंब ते खसिहैं,
जल गत वेंतलता कर सो कछु पट पकरति सी लसिहैं ।
झुकि रस भारन कैसे तहँ ते ह्वैहै गमन तिहारो,
जघन उघारी नारि सकै तजि को रस जानन वारो ।

—पूर्ण ।

वानीरम्=वेतसम् ।

१
त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः
२
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः।
९ ७ ६ ८
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
५ ४ ३
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥४२॥

तो वरमत छितिगध मिलि होइ पवन रमनीय,
वनगूलर पकवन प्रवल स्रवन सुभग गजप्रीय।
सीतल मद सुगध वहि करिहै पगपग सेव,
मारग में जब तू चलै पहुँचन को गिरिदेव।

—लक्ष्मण सिह

तव सिचित पुलकित छितिसो मिलि होति सुगधित जोई,
जाहि पियत कुजरगन सुडन सवद सुरजन होई।
जासो सुन्दर पकत उदुवुर तौन पौन हित जोरी,
झलिहै मद विजन तव अगन जात देवगिरि ओरी।

—पूर्ण।

निष्यन्द—पाठान्तरे 'निस्यन्द' (श्यामसुदर दास सम्पादित प्रति में)
स्रोत—पाठान्तरे 'श्रोत' (,, ,,)
देवपूर्वगिरिम्=देवगिरिम्। परिणमयिता=परिपाकयिता।

३ ५ ४ १
तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
७ ८ २ ६
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ।
१२ १० ११
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना—
१५ १३ १४ ९ १६
मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः ॥ ४३ ॥

नित्त निवास कुमार करैं जहँ तू उनको अन्हवाइयो जाइके,
पुष्पमई बदरा बनि के नभगग मिले फुलवा वरसाइ के।
जन्म दियो हर पावक माँहि जिनहिं सुरराज चमू हित लाइके,
मन्द करै रबि को परतापहु आपने मात पिता गुन पाइके।

—लक्ष्मण सिह।

स्वामि कारतिक धाम जानि तहँ सुमन मेध बन जैयो,
सुरसरि सलिल सिंचे सुमनन की बरसा करि अन्हवैयो।
कीन्हो सञ्चित तेज आपनो पावक मे हर जोई,
भये भानु ते अधिक प्रतापी सुरसेनापति सोई।

—पूर्ण।

स्कन्द =पार्वतीनन्दन स्कन्द सेनानीरग्निभूर्गुह ।
कार्तिकेयो महासेन शरजन्मा पडानन ॥

४ ३ २ ५ १
ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
६ ७ ८
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति।
१० ९ ११ १२
धौतापांगं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
१३ १४ १५ १६
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ॥ ४४ ॥

जा उनके बरही की पखा गिरि तारेजडी सी कहूँ परती है,
गौरि उठाइ के पूत सनेह सो कानन कंज सौं ले धरती हैं।
जासु वोएन की उज्जलता सिव के ससि सो समता करती है,
ताहि नचाइयो घोर बडी करि माहि गुफान के जो भरती है।

—लक्ष्मण सिंह।

जासु अमद मयूरवन मंडित पंख वीनि हरखाई,
पुत्र प्रेम सो सजनि भौन मे गौरि सरोज बिहाई।
स्वामि सिखी के चख सित सोहे लहि सिव ससि उजियारी,
ताहि नचैयो छाइ महाधुनि गिरि मह गूंजन हारी।

—पूर्ण।

ज्योतिर्लेखावलयि=तारापंक्तिमण्डलयस्मिन् तत्।
कुवलयदल=कमलदलम्।

४ २ १ ३ ८
आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लंघिताध्वा
६ ५ ७
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः।
१५ ९ १४
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्य-
११ १० १२ १३
न्स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्॥ ४५॥

चलियो घन पूजि के वा सुर को शर कौ बन जासु की जन्म मही है।
डर बूंदन के मग तेरौ तजें जिन दम्पति सिद्धन वीन गही है।
करि आदर हौले उलाँघियो तू गउमेधन तें सरिता जो बही है।
मनु कीरति श्री रतिदेवजु की जलरूप मे भूतल फैलि रही है।

—लक्ष्मण सिंह।

पूजि देव सिरमौर कुमारहि चलियो और अगारी
तुव बुंदन बरकाय बचैंहै वीन सिद्ध पिय प्यारी।
चंबल चारु उतरियो बदत जानि धेनु मख जाई,
रन्ति देव की सुजस धार जनु धवल धरातल छाई।

—पूर्ण।

सुरभितनयालम्भजाम् = गोहननाज्जाताम्।
रन्तिदेव = नाम राजा।

३ ५ ४ ६ १ २

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे

१० ७ ९ ८ ११

तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।

२० १२ १३ १५ १४

प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी—

१७ १९ १८ १६

रेकंमुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ४६ ॥

विमनार के मांहि बडी सरिता वह दूर ते दीखति हैं पतरी,
हरि रंग के चोर पियें जब तू जल वामे झुकाइ के देह खरी ।
लखि लेहिंगे खेचर तोहि घने करि दीठि तुरन्तहि चाव भरी,
मनु भूमि की मोतिन माल म एक बडी मनि नीलम आइ धरी ।

—लक्ष्मण सिंह ।

कृष्ण बरन को चोर जबै तू झुकै हरन को पानी,
नाकी धारा भूरि दुरित लघु ह्वै लगिहै छवि खानी ।
नभगामी लखिहैं तव सुखमा ऐसी परम रसाला,
मानौ महि तन मोतिन माला नीलम मध्य विमाला ।

—पूर्ण ।

शार्ङ्गिण =विष्णो । सिन्धु =नदी ।

१　　　८　　२
तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
३
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ।
४　　　　　　६
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
७　　५
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ४७ ॥

उतरि ताहि आगे मग लीजो,
　　दसपुर तियनि दरस चलि दीजो ।
भरे कुतूहल उनके नैना,
　　जानत भ्रू बिलास अरु सैना ।
लखन तोहि जब पलक उठैहैं,
　　अद्भुत मृग लोचन दुति पैहैं ।
जिमि अलि पाँति कुन्द सग भाजति,
　　सो छवि उन नैनन विच राजति ।

—लक्ष्मण सिह ।

बिचल कुद के सग भृग की भ्रमन छटा जो धारे,
पलक उठावत धारे प्यारे सित अरुनारे कारे ।
लखि तोहि तनछविऐन सुनैनन भ्रुवविलासिनी वामा,
करिहैं प्रकट कामना मनकी दसपुर मे अभिरामा ।

—पूर्ण ।

दशपुरम् = रन्तिदेवस्यनगरम् ।

२ ३ १ ४
ब्रह्मावर्तं जनपदमथ च्छायया गाहमानः
८ ५ ७ ६ ९
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।
१३ १२ १० ११
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
१५ १७ १६ १८ १४
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥ ४८ ॥

चलियो ब्रह्मावतहि छाई, अरु कुरुक्षेत्र पहुँचियो जाई।
विकट जुद्ध छत्रिन जहँ कीन्हे, अजहुँ प्रगट तिनके हैं चीन्हे।
बरसे जहँ अर्जुन सितबाना, राजन के सर बेपरमाना।
जिमि बरसति तेरी जलधारा, कमलमुखन अनगिनत अपरा।

—लक्ष्मण सिंह।

ब्रह्मावर्त प्रदेस प्रवेसन करि छाया के द्वारा,
कुरुक्षेत्र जइयो जहँ छत्रिन समर कियो अपारा।
विपुल विसिख विकराल किरीटी नृपन मुखन तहँ मारे,
हे जलधर! जलजात जालपर ज्यों जलपात तिहारे।

—पूर्ण।

अभ्यवर्षन पाठान्तरे 'अभ्यषिञ्चन्' (श्यामसुंदर दास सम्पादित प्रति में)
सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तद्देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते। मनु २।१७।

७ ६ ४ ५
हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
१ २ ३ ८
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।
१४ १० १३ १२ ९ ११
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना-
१७ १६ १८ १५
मन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥ ४९ ॥

तजी प्यारी हाला विमल निज वाला दृगन सी,
हली बन्धूस्नेही समर तजि सेई सरसुती।
मिले जो तू वाही सुभग सरिता के जलन ते,
करै अन्तस्सुद्धी तुव वरण ही सो कृष्ण की।

—लक्ष्मण सिह।

सुरस रेवती लोचन अंकित त्यागहि लीने हाला,
ऐयो जाको समर विमुख रहि बंधु प्रेम प्रति पाला।
सुइ सुंदर सुरसुती सलिल की सेवा करि मति धीरा,
तोहू ह्वै है निरमल मानस यद्यपि श्याम शरीरा।

—पूर्ण।

लाङ्‌ली = हलधर, बलदेव।

१ ६ २ ३
तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
५ ४
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् ।
९ ७ १० ८
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
१२ १३ ११
शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५० ॥

चल्यो आगे जइयो कनखल जहाँ जाह्नवललो,
हिमालय तें आई सगर-कुल-स्नेनी सुरग की ।
करी जाने गौरी भ्रुव कुटिल की फेनन हँसी,
जटा सम्भूजी की ससि सहित वीची कर धरी ।

—लक्ष्मण सिंह ।

बहै हिमालय ते कनखल ढिग जन्हु सुता छविस्नेनी,
लखियो सोइ सगर–सुत–तारनि सुरसरि स्वर्ग नसेनी ।
सेन फेन सो सौत सिवा की हँसति मनो भ्रुवभंगनि,
पकरि नभूकच परसि चंद को करि कर तरल तरंगनि ।

—पूर्ण ।

अनुकनखल=हरिद्वारम् ।

खलै को नात्र मुक्ति वा भजते तत्र मज्जनात् ।
अत: कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वरा: ।

शैलराजावतीर्णाम्=हिमालयादागताम् ।

३ ६ ८ १

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी

२ ४ ९ ७ ५

त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः।

११ १० १३ १२ १४ १५

संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययासौ

१७ १६

स्यादस्थानोपगतयमुनासंगमेवाभिरामा ॥ ५१ ॥

जु तू इच्छा वाको करि विमल पानी पियन की,
झुकै आधो लम्बो तन गगन मे ज्यो सुरकरी।
बनै तव छाया ते तुरत वह धारा ललितसी,
मनो है कालिन्दी अनतहि बिना सगम मिली।

— लक्ष्मण सिह।

सुर मतग सम श्याम रग तू अगलो अग झुकै है,
तासु फटिक सम सलिल पियन को जब तू नभ तिरछै है।
छैहै तेहि छिन छहरि छटा यो तेरी छाँह छबीली,
गग जमन सगम छवि जगम आई मनहु रँगीली।

—पूर्ण।

पश्चार्ध—पाठान्तरे पूर्वार्ध' (श्यामसुदर दास सम्पादित प्रति मे)।

तर्कये =विचारये। तिर्यक्=तिरश्चीन यथा स्यात् तथा

स्थानोपगत =प्रयागादन्यत्र प्राप्त।

१ ४ ३ २
आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगंधैर्मृगाणां
५ ६ ९ १० ८ ७
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
१७ ११ १२ १३ १४
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
१६ १५
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥ ५२ ॥

पिताजी पै वाके नितहि कसतूरी-मृगवसैं,
सिला सोंधो याते अरु धवल पालो परि लसैं।
विराजैगो जो तू स्रमहरन ताकी सिखर पै,
दिपैगो ज्यों गोरे सिव वृसभ खोदी कलिल है।

—लक्ष्मण सिंह।

कस्तूरी मृग करहिं सुगंधित रमि रमि जासु सिला को,
हिम दल वलित अचल वर उज्जल हेतु जौन गंगा को।
मग स्रमहारी यों तेहि नग पैं ह्वैहै घटा तिहारी,
मानहु सुभ्र उनदी नदी पंक सुछद बिदारी।

'—पूर्ण।

प्रभव=कारण अथवा पितरम्।

२ १ ३
तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा
६ ४ ५
बाधेतोल्काक्षपितचमरीवालभारो दवाग्निः।
१२ ८ ११ १० ९
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
१५ १४ १३
रापन्नार्तिप्रशमनफला संपदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५३ ॥

चलत पवन बन प्रबल घिसत तरु सरल परस्पर,
प्रगटत अनल प्रचण्ड हरत कवरी मृग कचभर।
सो दवागि यदि दहकि देह तिहिं अचल सतावै,
उचित होइ तब तोहि तुरत ही जल बरसावै।
करि सहस्रधारा जलद, दूर तासु बाधाकरै,
फल मुख्य सजन सम्पति यही, पीर पराई नित्तहरै।

—लक्ष्मण सिंह।

देवदारु द्रुम घिसे जु प्रगटै पावक पवनहि पाई,
गिरि दुख पावै ज्वाल जरावै सुरागाय समुदाई।
तासु समन समरथ तू ह्वै है सहसधार बरसाई,
सज्जन सपति सफल दुखित कौ सकट जासो जाई।

—पूर्ण।

सरल = देवदारु।

२ ३ ५ १
ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मि-
७ ६ ४ ९ ८
न्मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।
१० १२ ११
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णा-
१४ १६ १५ १३
न्केवा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥ ५४ ॥

सुनत सवद घनघोर सरभ तिहि परवत माहो,
कुपित होइँगे अधिक तोहि सहि सकिहैं नाही ।
कूदि कूदि करि दर्प वृथा अपनो तन तोरैं,
तो अलघ्य को चहैं लाँघि ऊपर की ओरैं ।
बरसाइ घने करका तिनहि, दीजो विहँसि भजाइ घन,
को न जगत लज्जित भयो जिनि कीजो निष्फल जतन ।

—लक्ष्मण सिंह ।

सहि नहि सकिहैं तेरी धुनि को सरभ गरब दिखरैहैं,
निज तन भंग करावन को तोहि नाहक नाँघन चैहैं ।
चकनाचूर कीजियो तिनको विपुल उपल वरसाई ।
तिरस्कार के जोग लोग जो करहि प्रयत्न वृथाई ।

—पूर्ण ।

यह श्लोक श्यामसुंदर दास सम्पादित प्रति में इस प्रकार है—
ये त्वा मुक्तध्वनिमसहना स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
दर्पोत्सेकादुपरि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिहासावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ।
शरभा = अष्टापदमृगविशेषाः ।

१ ३ २ ६ ५

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः

४ ७ ८

शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।

९ १२ १०

यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः

१४ १३ ११

संकल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥ ५५ ॥

सिला एक बिच लखत चिन्ह तहँ पद ससिसेखर,
नितप्रति पूजत रहत जाहि जोगी सिद्धेश्वर।
परिक्रमा घनतासु यथाविधि तू चलि दीजो,
भक्तिभाव उरलाय नम्र आगे बनिलीजो।
धरि अचल दीठि तिहि चरन में श्रद्धमान निष्पाप नर,
तन तजत मिलत सिवगणन में सदा सदा को पाइ बर।

—लक्ष्मण सिंह।

तहाँ सिला अंकित सिवपद के दरसन घन करि लीजो,
भक्ति लीन अति दीन भाव सो तासु प्रदच्छिन कीजो।
सेवैं सिद्ध सहित विधि ताको तासु दरस सुभ पाई,
पावैं सुखद प्रमथप्रद नीरद अंत सत समुदाई।

—पूर्ण।

उपचितबलिम् = रचितपूजाविधिम्।

परीयाः = प्रदक्षिणं कुरु।

करणविगमादूर्ध्वम् = देहत्यागानन्तरम्।

५ ४ १ ३ २

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः

६ ८ ९ ७

संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किंनरीभिः।

१२ ११ १३ १४ १७ १० १५ १६

निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्या-

२० २१ १९ १८ २३ २२

त्संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥ ५६ ॥

बाँस रन्ध्र भरि करत पवन धुनि अधिक सुहावन,
मानहु मुरली बजति मधुर सुर सो मन भावन।
विह्वल किन्नर नारि आपनी तान सुनावति,
हरखि हरखि जिय माँहि त्रिपुर विजयी गुन गावति।
घनघोर जाइ यदि तू करै ज्यो मृदग गुमकत गुफन,
पूरन समाज सगीत तहँ पशुपति को बनि जाइ घन।

—लक्ष्मण सिह ।

पवन साँस सो बाँस पुज तहँ मज्जु मजु सुर छावै,
मिलि तिनमे गुन भरी किन्नरी त्रिपुर विजय जस गावै।
तहँ मृदग सम नाद कदरन छैहै जो तू रूरो,
तौ शकर सगीत बाज को साज होइगो पूरो।

—पूर्ण ।

'वेणव कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धता' इति अमर ।
'कीचको दैत्यभेदे स्याच्छुष्कवशे द्रुमान्तरे' इति विश्व ।

१ ३ २
प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषा-
४ ५ ६
न्हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।
७ १४ १५ १३
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
१० ११ ८ १२ ९
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥५७॥

आगे हिमपरबत तट पाटी, क्रौञ्चरन्ध्र नामक इक धाटी।
है सोई हसन कौ द्वारा, भृगुपति जस प्रगटावन हारा।
ता बिच कढि उत्तर चलि दीजौ, तिरछी गति लम्बो तन कीजौ।
जिमि हरि श्याम पाँव विस्तार्यो, बलि छलिवे को जब व्रत धार्यो।

—लक्ष्मण सिंह।

हिमि गिरि निकट बिपुल थल नीके तिन आगे सुठि न्यारो,
बिदित क्रौञ्चविल हस द्वार है परसु राम जसवारो।
उत्तर जैयो प्रविशि ताहि झुकि अग बढाय रसाला,
ज्यो बलि बधन समय विष्णु को श्यामल चरण विसाला।

—पूर्ण।

लम्वो तन—पाठान्तर 'लम्वोत न' (श्यामसुदर दास सम्पादित प्रति मे)
भृगुपतियशोवर्त्म=परशुरामस्य यश प्रवृत्ति कारणम्।

२ १ ३
गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः।
५ ४ ६
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
९ ८ ७ ११ १७ १०
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
१३ १२ १६ १४ १५
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥ ५८॥

उठि ऊँचो कैलासहि जइयो, अतिथी वा गिरि को बनि रहियो।
है दर्पण वह सुर वनितन को, उकसायो लकेस भुजन को।
तुग सिखर सो नभ में राजत, सितता तासु कुमुद लखि लाजत।
मनु सिव अट्टहास इक ठौरो, करत प्रकास दिसन बिच धौरो।

—लक्ष्मण सिह।

रमियो चढ़िकै रजत सैल वर दरपन देव तियन को,
निज हाथन सो कियो दसानन विलग जासु सिखरनको।
सो कैलास कुमुद छवि गजन सृ गन वेधि अकासै,
दिन दिन के सघट्ट सभु के अट्टहास लौ भासै।

—पूर्ण।

प्रतिदिनम्—पाठान्तरे 'प्रतिदिशम्' (श्यामसुन्दर दास सम्पादित प्रति में)
अट्टहास = अतिहास।
'अट्टावतिशय क्षौमौ' इति यादव। धावल्याद्धासत्वेनोत्प्रेक्षा।
हासादीनां धावल्यं कवि समय सिद्धम्।

१४ २

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे

३ ४

सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ।

१२ ५ ११ १३

शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-

८ ९ ३ ७ १०

मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥ ५९ ॥

वाके निकट जबहि तू जाई, रहै रुचिर अजन रँग छाई ।
स्वेत बरन वह सैल निदाना, द्विरददत सदग्वड समाना ।
सोभा तुरत मनोहर पावै निरखत इकटक नैनन भावै ।
जिमि हलधरतन लसत सुहायो, नीलवसन काँधे लटकायो ।

—लक्ष्मण सिह ।

नूनन दारित दति दत सम सित दुतिवत लसै सो,
सज्जित अजन सरिस सुरजन तू तेहि सग रगैगो ।
नयन विमोहिनि वा सुखमा की उपमा ह्वै है प्यारी,
जनु बलराम सँवारो काँधे पटी स्यामरग वारी ।

—पूर्ण ।

स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे=मसृण मर्दित च यत् कज्जल तस्य आभा इव आभा यस्य तस्मिन्

सद्य कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य=तत्काल छिन्नस्य गजदन्तस्य छदवद्धवलस्य ।

४ १ २ ५
हित्वा तस्मिन्भुजगवलयं शंभुना दत्तहस्ता
२ ७ १३ ९ ८ ६
क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पादचारेण गौरी।
११ १३
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुःस्तम्भितान्तर्जलौघः
१४ १३ १०
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाऽग्रयायी ॥ ६० ॥

लिए सम्भुकर निजकर माही, भुजगवलय जा कर विच नाही
गौरि होइँ पायँन यदि फिरती, वा क्रीडागिरि माँहि विचरती।
पौरी रूप सुभग वनि लीजौ, पुष्ट नीर अन्तर को कीजौ।
धरि धरि पग तोपैजव वावै, चढत चरन कछु खेद न पावै।

—लक्ष्मण सिह।

अहि कंकन विहीन संकर के कर को लिए सहारा,
आवै जो तहँ गौरि करन को गिरि विहार सुखसारा,
तौ निजनीर वाधि वनि जैयो सोपानन की स्रेनी,
आरोहन मे तासु मंजु पद कंजन को सुखदेनी।

—पूर्ण।

विचरेत् —पाठान्तरे 'विहरेत्' (श्याम सुंदर दास संपादित प्रति मे)
भङ्गीभक्त्या = पर्वणा रचनया।
स्तम्भितान्तर्जलौघ = घनीभाव प्रापितोऽन्तर्जलस्य प्रवाहो यस्य स।

१ २ ४

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं

७ ५ ३ ६

नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।

१२ १३ ११ ९ ८ १० १४

ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे घर्मलब्धस्य न स्या-

१५ १७ १८ १६

त्क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भीषयेस्ताः ॥ ६१ ॥

सुर जुवती जुरि मिलि तहँ आवै, पकरि तोहि जलयन्त्र बनावै।
रघसि रघसि हीरा कगनसो, नीर झरावै तव अगन सो।
इन खिलवारन तें यदि तेरो, छुटकारो नहि होइ सवेरो।
स्रवन कठोर घोर तवकीजो, यो डरपाय उनहि मग लीजो।

—लक्ष्मण सिह।

तहँ सुरनारी ककन कोरन वार वार तोहि मारी,
बादि बनैहै वारिजत्र तोहि वारि अपार बिसारी।
तिन पाले परि ग्रीसम मे जो पिण्ड न छूटै तेरो,
तौ उन चपल तियन डरवैयो करि घन सबद घनेरो।

—पूर्ण।

यन्त्रधारागृहत्वम्=यन्त्रेषु धारा यन्त्रधारा तासागृहत्वम्
—कृत्रिमधारागृहत्वम्।

३ २ ४
हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
७ ६ ५
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।
११ १० ९ ८
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-
१२ १ १३ १५ १४
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६२॥

उपजत वृन्द वृन्द वारिज सुनहरी जामे,
ऐसो मानसर को लै नीर मेघ पीजो तू।
बूदन बुन्यो सो मुख वस्त्र वाहि दइके नेक,
दिग्गज ऐरावत सो प्रीति मानि लीजो तू।
वारि भरी बातन में कल्पवृक्षपातन में,
कान की सुहाती सी धुनि सुनाइ दीजो तू।
फटिक समान गोरे बिम्बित तेहि सैल माहि,
जोई नाहि भावै सो विहार फेरि कीजो तू।

—लक्ष्मण सिंह।

कनक कमल उपजावन वारो मानस को जल पीजो,
सलिल लियत ज्यों ऐरावत को मुख अँगोछ हित कीजो।
कल्प लता दल वायु वेग सों पट समान फहरैयो,
यहि विधि भोग विलास विविध करि परवत पै सुख पैयो।

—पूर्ण।

श्याम सुन्दर दास सम्पादित प्रति में अन्तिम दो पंक्तिया इस प्रकार है—
धुन्वन् वातैः सजल पृषतैः कल्पवृक्षांशुकानि—
छायाभिन्नस्फटिक विशद निर्विशेस्त नगेन्द्रम्।
कल्पद्रुम = पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्।
निर्विशे = सुखमनुभव। नगेन्द्रम्—कैलासम्।

३ २ ४
तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां
९ ८ ६ ११ ७ ५ १० १
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
१२ १४ १९ १७ १३
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
१५ १६ १८
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥ ६३ ॥

देखि जानि लीजो वा नगेन्द्र के बसी हैं लङ्क,
अलका हमारी तीर जह्नु की दुलारी के।
पीतम के अक माहि ए हो कामचारी मेघ,
बैठी जिमि नारी छोरे छोर स्वेत सारी के॥
पावस में सोई नीर चूवत धरेगी तोहि,
ऊँचे मे निकेत सात खन की अटारी के।
अबला सँवारे मानो मोतिन सो गूँथे जाल,
सीस पै सलोने चारु वेनी बार कारी के।

—लक्ष्मण सिंह।

नगपति अक लसै नागरि सो अलका नगरि सुहानी,
सुरसरि सारी रही सरकि सित तू लैहै पहिचानी।
पावस मे अभिराम कामचर! धाम तुग अनि वाके,
धारन जलधर जाल-बाल ज्यो बाल गुँथे मुकता के।

—पूर्ण।

'विमाना'=पाठान्तरे 'विमाने' (श्याम सुन्दरदास सम्पादित प्रति में)
दुकूल = सूक्ष्मवस्त्रम्।
न त्व दृष्ट्वा न पुरलका=पुनस्त्वन्तु न ज्ञास्यसे इति न किन्तु ज्ञास्यसे एव।

पूर्वमेघ समाप्त।

८ २ ९ ३

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः

४ १०

संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।

११ ५ १२ ६

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः

७ १३ १५ १६ १ १४

प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ १ ॥

होड उहाँ करिहै बहु भाँतिन तो सग मन्दिर नीकी छटा के,
तू चपला-सुरचाप लिये उनमे अबला अरु चित्र अटा के।
तो उर नीर उहाँ भुमि हीर मृदङ्ग उतै क्षत शोर घटा के,
तुङ्ग है तू तौ शिखा उनकी परसिद्ध है नाम सो अभ्रचटा के ॥

—लक्ष्मण सिंह

तो मे दामिनी है चारु कामिनी विराजे उतै,
तो मे सुरचाप उत चित्र रग वारे है।
मधुर गराज तो मे गायन के काज तहाँ,
सुन्दर मृदगन के शब्द होत न्यारे है।
तो मे जलजाल जाल मनि के विशाल तहाँ,
तेरे सम तिनके शिखर तुग भारे है।
अलकापुरी के दिव्य धामन में धाराधर,
एते साज तेरी तुल्यताई के निहारे है ॥

—पूर्ण।

तुलयितु अल=समीकर्त्तुम् पर्याप्ता।

३ ४ ५ ६
हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
९ ८ ७ १०
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।
११ १३ १२ १४
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
१६ १५ १७ १ १८ २
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ २ ॥

तिय हाथन केलिकमोद उहाँ अलकावलि सोहत कुंदकली ।
रजलोध्रप्रसून परे मुख पै दुति दीखति ज्यों पियराई मली ॥
कुरवा चए चोटिन माँहि लसै अरु कान सरीसन की अवली ।
तुहि देखन फूल कदम्ब खिलै सोइ माँग धरे सुखमा है भली ॥
—लक्ष्मण सिंह ।

कर में कमल कुन्द कलिका है अलकन में,
लोध को पराग ओप आनन बढ़ावे है ।
कुरवक वेस केसपास माहि भासमान
कानन सिरीस को प्रसून चारु भावे है ॥
अम्बुधर ! तेरो उपजायो त्यों कदम्ब वर
छवि अवलम्ब माग मध्य में सुहावै है ।
सुमन सिगार तहाँ नागरी नवेलिन को
सदा खट-ऋतु की बहार दरसावै है ॥
—पूर्ण ।

श्लोकस्य उत्तरार्द्ध पाठान्तरे—चूडापाशे नव कुरवक चारुकर्णे शिरीष
सीमन्तेऽपि त्वदुपगमज यत्र नीप वधूनाम ॥
(श्यामसुन्दर दास सपादित प्रति मे)

१ ४ २ ३

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा

७ ६ ५

हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः।

१० ८ ९

केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा

१२ ११

नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥ ३अ ॥

बारौ मास तामे मजु फूले द्रुम पुजन मे,
भृंगन के वृंदन को गुंजन सुहावै है।
माजे रहै तालन की सुखमा सरोजजाल,
सोभा त्यो मरालन की माल सरसावै है।
पालतू कलापिन कलाप बाँकी बानिक सो,
ग्रीवाको नचाय नाचि आनँद बढावै है।
लेस अँधियारी को न होवे बेस जामिनी को,
पूरन प्रकास नीको चाँदनी को छावै है॥

—पूर्ण।

२ १ ५ ४
आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
८ ७ ६
नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात् ।
१३ ११ १० १२
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
२ १८ १४ १६ १७ १५ १९
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ॥ ३८ ॥

केवल अनदवारे असुआ निहारे तहाँ,
दुख की निशानी कहूँ नेक ना लखानी है ।
ताप तहँ देखी बस पाँचसर आँचवारी,
जानी जासु औषध विलास सुखदानी है ।
मान के सिवाय है वियोग को न जोग दूजो,
पूरन जो रीति प्रीति नीति की बखानी है ।
वैस ना दिखानी ह्वाँ जवानी के सिवाय दूजी,
ऐसी मोदसानी अलका की राजधानी है ।

—पूर्ण ।

१ ३ ४ ७ ६
यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
५ २
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः ।
५ १४ १३ १२
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
८ १० ९ ११
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥ ३ ॥

स्वेत बिलौर के भौनन मे तहँ फल से तारक बिम्ब परै नित ।
तो मधुरी धुनि के अनुमान मृदग बजै सुर मद भरै नित ॥
कामिनि भामिन सग लिए बहु भाँतिन यक्ष बिहार करै नित ।
पीवत कल्पप्रसूत मधू सिगरे रतिरग प्रसग सरै नित ॥

—लक्ष्मण सिह ।

चन्दमनि मडित अमद मन्दिरन माँहि,
तारन के बिम्ब फल भासत बिमाला है ।
जैसी मन्दर घन ! घनकै तिहारी घनी
तैसी तहाँ ठनकै मृदगन की आला है ॥
सग नव बामा लसै रूपरस धामा चारु,
सुख के सकल साज सोहत रसाला है ॥
'रतिफल' नामवारी रति परिनाम वारी,
कल्पबृच्छ हाला के पियत जच्छ प्याला है ॥

—पूर्ण ।

'रतिफल' पाठान्तरे 'रतिरस'
सितमणि=स्फटिकमणि ।

४ ६ ५

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-

८ ७ ९

र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः।

११ १०

अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः

१ १२ २ १ ३

संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः॥ ४॥

करि मनुहारी देवता हू जाहि वारी ऐसी,
रूप उजयारी छविवारी सुकुमारी है।
धूप के समै में सुर द्रुमन समूह छाँह,
सुरसरि तीर सीर सेवही सुखारी है।
आवै जो समीर देवगंगा को परसि नीर,
ताके तन लागे मन्द पावै मोद भारी है॥
हेमवारी रज में मुठी सो करि मेल प्यारी,
खेल मनि खोजवारी खेलती कुमारी है॥

—पूर्ण।

४ १ ८

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र विम्बाधराणां

५ २ ६ ३

क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।

१० १२ ११

अर्चिस्तुंगानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपा-

७ १४ १३ ९

न्ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ ५ ॥

तहँ प्रीतम ढीठ भये रसके बस हाथ चलावत जोरी करै ।
गिरि जच्छवधून के बस्त्र कछू खिच छोर छरान की डोरी परै ॥
दुति निर्मल रत्नप्रदीप धरे सांइ लाइमी आँखिन ओरी जरै ।
तिन ऊपर कुकुम फेकि वृथा गडि लाजन भोरी सी गोरी मरै ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

तहाँ रसवन्त कन्त प्रेमबस आतुरी सो,
चातुरी सो नीबी छोरि अम्बर छुटावै है ।
तब नव जोबना लाल अधरान वारी,
प्यारी उजियारी मे त्रिबस ह्वै लजावै है ॥
ताही ते विशाल मनि दीपन बुझाइवे को,
भोरी नव बाल यो उपाय ठहरावै है ।
ताकि ताकि तिन पै चलावै मूठ कुकुम की,
रतन-प्रभाव को बुझाय पै न पावै है ॥

'विम्वाधराण' पाठान्तरे 'यक्षाङ्गनाना'
'क्षौम' पाठान्तरे 'वास'
'अभिमुखमपि' पाठान्तरे 'अभिमुखगतान्'
(श्यामसुदर दास सपादित प्रति से)

२ ४ १ ३

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी-

८ ७ ९ १०

रालेख्यानां नवजलकणैर्दोषमुत्पाद्य सद्यः ।

११ ६ ५ १४

शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशो जालमार्ग-

१२ १३ १५

र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ ६ ॥

जहँ पौन के प्रेरे कितेकहु बादर वा उनहार के आवत हैं ।
जल-बूँदन की बरषा करिकै अँगनान के चित्र मिटावत हैं ॥
भयभीत से फिरि झरोखन ह्वै सिमटे तन बाहर धावत हैं ।
यहि जान परै धुँआ बनि कै बड़े चातुर वेहु कहावत हैं ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

जहाँ भौन अटी पौन दूतों की सहाय पाय,
ता मे मत्र कनिक अटान बीच गहि गहि ।
चित्रन की अवली विचित्र जलवली तिन्हें
रसमई बन्दन बिगारैं मन्द बहि बहि ।
याही अपराध सो जसम पूनि कै अँदस,
धरि कै कपट भस चातुरीन गहि गहि ।
निसरि परात जात राह सो झरोखन की,
छिन्न भिन्न ह्वै कै अरु धूमरूप लहि लहि ।

— पूर्ण ।

'यद्' पाठान्तरे 'च'
'नवजलकणैः' पाठान्तरे 'सजलकणिका'
'त्वादृशो जालमार्गैः' पाठान्तर 'त्वादृशा यत्र जाले' ।
(श्यामसुन्दर दास संपादित प्रति से) ।
नेत्रा = नायकेन
सततगतिना — वायुना ।

१ ८ ७
यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानां
१० ९ ५
अङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।
३ २
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
११ ४ ६
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥ ७ ॥

लटकें तहाँ सूत के जाल धरी मणि इन्दुप्रिया छवि पावती है।
सित निर्धन चन्द मरीचिन को अपने तन खेंचि मिलावती हैं॥
फिर उज्जल नीरन की बुँदियाँ हरवें हरवें बरसावती हैं।
गलबाँही पिया ते छुटी ललना तिनकी रतिग्लानि मिटावती हैं॥

—लक्ष्मण सिंह।

आधि रात बीते घनपाँति जब दूर होति,
छावत अमंद नभ चंद उजियाला है।
मैनरस बाढ़े गाढ़े पिय के अलिंगन सों,
अंग अंग शिथिल सुहाति प्रीति बाला है।
चंदमनि माला चारु उर में बिसाला वर,
चाँदनी में द्रवत स्रवत बुंद जाला है।
हीतल सुखद मंजु सीतल बिमद सोई
तुरत निवारि देत सुरत कसाला है।

—पूर्ण।

'भुजालिङ्गनोच्छ्वासितानाम्' पाठान्तरे 'भुजोच्छ्वासितालिङ्गितानाम्।'
'चन्द्रपादैर्निशीथे' पाठान्तरे 'प्रतिहतश्चन्द्रपादैः।'

२ ६ ७
अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै-
९ ८ १० १ ११
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्द्धम् ॥
१२ ३
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया
४ १३ ५ १०
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥ ८ ॥

निधि अविराम धाम जिनके रहति पूरी,
विविध विलास वर नितही अधीन है।
लोग अलका के रम एन रम वैन गाते,
लीन्हे निज मग जो विबुध कचनीन है।
सुभग अराम जौन चैतन्थ नाम तामे,
प्रति दिन करत प्रवेश मुख लीन है।
मग मग ऊँचे मजु माधुरे सुरन माँहि,
गावत कुबेर जस किन्नर प्रवीन है।

—पूर्ण।

४ १ ५

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः

६ ८ ७ ९

पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च ।

१० ११ १३ १२

मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-

३ १४ १५ २

र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥ ९ ॥

अलकावलि ते गिरि फूल परे गति आतुर माँहि मदारन के ।
अरु कानन ते खिसके अवतंस बने कलधौत कल्हारन के ।।
कुच उन्नति के गुन ते मुकता बिखरे गुन टूटत हारन के ।
इनते वहाँ भोरहि जानि परै मग राति भए अभिसारन के ।।

—लक्ष्मण सिंह ।

लोल अलकावलि ते छूटे जे गमन मांहि,
कल्पद्रुम सुमन अवनि पै सो सुहात है ।
मंजु पल्लवन के परे हैं झरि खंड रूरे,
कानन ते खसके कनक जलजात है ।।
मांग ते झरे हैं मुकताहल विमल तैसे,
हीतल के हार त्यो महीतल लखात है ।
रात अभिसारिका नवेलिन के मारग के,
प्रात के समय मे चिन्ह एते दरसात हैं ।।

—पूर्ण

६ ४ ३ १ ५
मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
७ १० ११ ८ २ ९
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ।
१३ १४
सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
१२ १५ १६
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥ १० ॥

भीत किन्नरेश रहै नित्त ही महेश इहाँ,
जानि या रतीश चित्त शंका बिसरावै ना ।
ताही डर बार-बार अलकापुरी के माँहिं,
भृंग की प्रतिञ्चा खैंचि चाप पै चढावै ना ॥
नागरि नियान नैन विभ्रम प्रताप पाय,
कारज मैं वाके तऊ हानि होन पावै ना ।
छूटत कटाक्ष बाँकी भौंह की कमानन ते,
कामीरूप वको बिना बेध्यो रहि जावै ना ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

धनद भुवाल के सनेही चंदभालजू को,
प्रकट निवास रतिनाथ तहँ जानो है ।
कुसुम कमान मधुपावली प्रतिचा जुक्त,
ताही ते न तानै हीय रहत सकानो है ।
तदपि प्रवीन प्रमदान के सहारे सदा,
काम को सकल काम सफल लखानो है ।
भृकुटी कमानन अचूक नैन बानन को,
हीय कामी बानन को बनत निसानो है ।

—पूर्ण ।

३ २ ५ ४
वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
७ ६ ८
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ।
११ १० ९ १
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
१३ १५ १२ १४
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥ ११ ॥

देत है वसन वर वरन वरन वारे,
सुरा देत नैनन विलास जो सिखावै है ।
मंजुल सुमन देत पल्लव मृदुल देत,
भूषन विपुल को सुपास दरसावै है ।।
चारुपद कंजन को रंजन करन जोग,
लाख को सुरंग रंग चोखो सरसावै है ।
एक ही कलपतरु चारि हू प्रकारन के,
अबला सिंगारन के साज उपजावै है ।।

— पूर्ण ।

४ ३ २

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं

५ ६

दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।

९ ० ८ ७

यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्द्धितो मे

१० ११

हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ १२ ॥

यक्ष राज भौनन ते उत्तर की ओर नैक,
ताही अलका में मीत मन्दिर हमारो है ।
दूर ते निहार्यो जात चित्र चारु तोरन तें,
द्वार पै सजे जो मानो चाप इन्द्रवारो है ।
ताके बाग बीच एक नन्हा मन्दार-वृक्ष
मेरी तीय पाल्यो मानि पुत्र सो दुलारो है ।
गुच्छन के भार तें झुको है डार डार आछी,
आय जात हाथ फूल बीनत सुखारो है ।

—लक्ष्मण सिंह ।

धनद भवान के महालय के उत्तर में,
सोहन समीप भौन मेरो अभिराम है ।
इन्द्र की कमान के समान तासु तोरण है,
तासों दरसात दूर ही ते छवि धाम है ॥
ताहि तीर राजत है बाल पारिजात प्यारी,
सुत के समान जाहि पोस्यो मम बाम है ।
कर सों झुकाई देत वारे चारु गुच्छन को
पाय सरसाई झर्यो मोहत ललाम है ।

—पूर्ण ।

'यस्योपान्ते' पाठान्तरे 'यस्योद्याने' (श्यामसुंदर दास संपादित प्रति में)

८ १ २ ३

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा

५ ७ ६ ४

हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः।

९ १५ १४

यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं

१६ १० १२ १३ ११

नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामभिप्रेक्ष्य हंसाः॥ १३॥

ताही भौन माहि ताल सुन्दर बन्यो है एक,
सीढी लगी है जामें मरकत शिलान की।
जातरूप कंज की कलीन ते रह्यो है छाय,
अद्भुत सजी है नाल नीले उपलान की॥
आय के बसे हैं जेते राज हंस वाके नीर,
नेक ना रही है चित्त चिन्ता आपदान की।
तोहू को बिलोकि वे न याते सुधि लावैं नेक,
निकट रहे हू मानसर के पयान की॥

—लक्ष्मण सिंह।

मेघ! तामें वापी एक सोभा की निधान सोहै
नीलम शिला की जामें पैरी भूरि भावै है।
पत्रन मृणाल वारे सुख मणि विशाल धारे
सोने के सरोज जाल फूले ओज छावै है।
ताही के विमल सुख-दायक सलिल माहि
हंसन के वंस निज वास ठहरावैं है।
आनंद में पागे सखा! पावसो के लागे तौन
पासहू के मानस को ध्यान में न लावैं है।

—पूर्ण।

'विकच कमलैः' पाठान्तरे 'कमलमुकुलैः।' (श्या० मु० दा०)
व्यपगतशुच=अकलुष जलत्वाद् वीतदुःखा।

२ ४ ३
तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
५ ६
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ।
७ ८ १ १० ९
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
१३ ११ १२ १४
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥ १४ ॥

वाही ताल तीर पै हमारो बन्यो क्रीडाशैल,
चोटी चारु जापै इन्द्रनील की मढ़ाई है ।
जातरूप केलन की बारि चहुँ ओर लगी,
नैनन सुहाती भाती शोभा सरसाई है ॥
देखि-देखि तोहि मीत संग चंचला के आज,
तेरी उनहारि मोहि वाकी सुधि आई है ।
जानत हूँ प्यारो सखो मेरी वनिता को नेह,
आए सुधि होति चित्त याते भीरुताई है ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

ताके तीर सोहै प्यारो गिरिवर केलि वारो
नीलम सँवारो तासु शिखर सुहावै है ।
सुन्दर बनक वारे कदली कनक वारे
आस पास लागे भली आभा भूरि भावै है ॥
ए रे नील नीरद ! सुहावनी समीप तेरे
छनदा छहरि चारु चोखी छटा छावै है ।
तातें याद आवै शैल साई प्रिय भामिनी को
मेरे सखा ! मेरो मन भीरु अकुलावै है ।

—पूर्ण ।

'तस्यास्तीरे' 'पाठान्तर' 'यस्यास्तीरे'
'वेष्टनप्रेक्षणीयः' पाठान्तर 'वेष्टन प्रेक्षणीय' (श्या० सु० दा०)

६ ५ ९ ७ १ ८

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः

४ २ ३

प्रत्यासन्नौ कुरवकवृतेर्माधवीमण्डपस्य।

१० १४ १३ १२ ११ १५

एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी

२० १६ १९ १७ १८

कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः ॥ १५ ॥

मडप है माधवीलता को रमनीक तहाँ,
सुन्दर कुरे की बारि ओर पास छाई है।
नेरे ही अशोक लाल सोहै लोल पल्लव लै,
दूजी ओर केशर हू ठाढो सुखदायी है।'
दोहद बहाने एक तेरी वा सखी को पात्र,
वायो छूयबे को आस मेरी सी लगाई है।
प्यारी मुख आसव के लेन काज दूसरे मे,
ताही मिस मेरी भाँति लालसा समायी है॥

—लक्ष्मण सिह।

माधवी निकुज को कुरैयन के पुज घेरे
नेरे ही अशोक औ वकुल दोनो राजही।
लाल रग वारो लोल पल्लव वलित एक,
दूजे मे ललित साज सुखमा के भ्राजही॥
वनिता हमारी प्यारी सखी जो तिहारी मेघ!
ताकी अभिलास दोऊ मेरे सग साजही।
एक पद वाम चाहै दूजो मुखमधु वाको,
फूले और फरिवे की कामना के व्याज ही॥

— पूर्ण।

'केशरश्चात्र' पाठान्तरे 'केशरस्तत्र,'
'प्रत्यासन्नौ' पाठान्तरे 'पत्यासन्न' } (श्या० सु० दा०)

१ ५
तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
४ ३ २
मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः।
७ ६ १० ९ ८
तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
१५ १४ १३ १२ ११
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥ १६ ॥

उनही के बीच में बन्यो है खम्भ कंचन को,
पटुली सु जापै धरी फटिक सिला की है।
मूल में जडी है कनी चोखी चारु पन्नन की,
सोहै छवि आछी नए बाँस मंजुला की है॥
आयके बिराजै तापै नीलकण्ठ तेरा मीत,
बेला जब होति भानु खंडित कला की है॥
प्यार सो नचावै ताहि मेरी प्रान प्यारी नित्त,
दै दै झनकीली ताल कंकन छला की है।
—लक्ष्मण सिंह।

मध्य तिन दोहुन के सोने को सुहायो एक
खंभ रमनीय अति बिलसत छबिधाम है।
मूल में लगे है हरे बाँस सी प्रभा के मनि
ऊपर फटिक चौकी धरी चोखी अभिराम है॥
अरे मेघ! ताही पै तिहारो सखा नील कंठ
साँझ समै बैठके करत बिसराम है।
कंकन की माधुरी रसीली झनकार संग
तारी दै नचायो जाहि मेरी प्रिय बाम है॥
—पूर्ण।

'नर्तितः कान्तयामे' पाठान्तरे 'कान्तया नर्तितोमे'। (व्या० सु० दा०)

२ १ ३ १२
एभिः साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
५ ६ ४ ७
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ।
११ ९ १० ८
क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
४ १७ १३ १५ १८ १६
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ।। १७ ।।

इन चिन्हन पहिचानियो मेरो नगर सुजान ।
शख पद्म द्वारे लिखे करि तिनहू पै ध्यान ।।
अब तौ मो बिन होयगो वह घर शोभा हीन ।
अस्त भएँ जिमि भानु के वारिजवन छविहीन ।।

—लक्ष्मण सिंह ।

चतुर सुजान हे बलाहक जू मीत मेरे
एते सब चिन्हन को राखिके हिये मे ध्यान ।
देखि कै पवित्र पुनि शख औ पदम निधि
चित्र जिनको है मम द्वार पै विराजमान ।।
एती पहिचान सो सदन मेरो पावहुगे
देखहुगे मो बिन है फीकी सुखमा महान ।
जैसे ओज कैहूँ भाँति धारत सरोज नाहि
होवै जगमाही अशुमाली जो न भासमान ।।

—पूर्ण ।

'क्षामच्छाय' पाठान्तरे 'मन्दच्छाय' (श्या० सु० दा०) ।

४ २ ३ १
गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः
७ ५ ६ ८
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः ।
१३ ११ १२ ९
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
१०
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ १८ ॥

गजशिशु सम लघु बनि तुरत मम प्यारी हित लाय ।
क्रीडागिरि पै बैठियो जो मैं दियो बनाय ॥
भवन बीच चपला चमक मन्दी कीजो मीत ।
लसति पाँति जुगनू मनो अबला होइ न भीत ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

वेग ही मदन मे प्रवेश करिबे के हेतु
जलधर ! तू भेस बाल कुंजर का धारियो ।
सुन्दर सिखर वारो सुखद विहार शैल
प्रथम बतायो जौन ताही पै पधारियो ॥
जोगन अवलि की सुदीपति सी भासमान
दामिनी दमक दीठि रुचिर पसारियो ।
रुचक ही रचक सुरोचक प्रकाश करि
भीतर भवन ओर नीरद निहारियो ॥

—पूर्ण ।

'शीघ्र संपात हेतो.' पाठान्तरे 'कर्तुमल्पाल्पभासं' (श्या० सु० दा०) ।

१ २ ३ ४
तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
५ ६ ७
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
८ १० ९
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
१५ १६ १७ ११ १४ १३ १२
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥ १९॥

बिम्बाधर दाडिम-दशन निम्न-नाभि कृश-गात।
बसति तहाँ मृगलोचनी युवति छीनकटि तात॥
श्रोणिभार अलसान गति झुकति कछुक कुचभार।
मानहु ललना सृष्टि में मुख्य रची करतार॥

—लक्ष्मण सिंह।

दंत दुतिवंत की सघन सुहाति पाँति
अधरन बिंब ऐसी आभा अरुनारी है।
चकित मृगी सी चारु चंचल चितौन चोखी
सुंदरी कृशोदरी गँभीर नाभिवारी है॥
उन्नत उरोजन उभार सो नमित नेक
भार सो नितंबन के मंद गति धारी है।
देखहुगे ऐसी रूपवारी मम प्यारी मनो
नारिन में पहिली बिरंचि ने सँवारी है॥

—पूर्ण।

'शिखरिदशना' पाठान्तरे 'शिखर दसना' }
'सृष्टिराद्येव' पाठान्तरे 'सृष्टिराद्यैव' } (श्या० सु० दा०)

शिखर = दाडिम बीज सदृशरक्तमणिविशेष।

७ १० ६ ९ ८
तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
३ २ १ ४ ५
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
११ १३ १४ १२
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
१७ १८ १५ १६
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्॥ २०॥

नाहि सजन घन जानियो मेरो आधो जीउ।
रहति अकेली मो विना चकई ज्यो विन पीउ॥
मित भाषिनि उत्कठिना विरह कठिन दिन जान।
शीत हनी जिमि कमलिनी औरहि रूप दिखान॥

—लक्ष्मण सिंह।

मेरो सग छूटे प्रिय अगना नवेली वह
व्है रही अकेली चक्रवाकी अकुलाई सी।
रहति विहाल ताते अधिक न बोलै बात
जानियो सु मेरे दूजे प्रान सुखदाई सी॥
दारुन वियोग वारे भारी इन द्योसन मे
सोक वाकी मूरति ही दूसरी बनाई सी।
मेरे जान व्है है सुकुमारी प्रान प्यारी त्यो ही,
सुन्दरी सरोजिनी तुषार की सताई सी॥

—पूर्ण

१५ ८ १ ९
नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
२ ३ ४
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।
५ १० ७ ६
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
१२ १३ ११ १४
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥ २१ ॥

रोइ रोइ सूजे सरवा वा प्यारी कै नैन ।
तानी स्वासन ते रह्यो वह रँग होठन पै न ।।
खुले बार कर पै धर्यो आनन कछुक लखात ।
ज्यो घन घेर्यो चन्द्रमा छवि मलीन दिखरात ।।

—लक्ष्मण सिंह ।

निपट बिहाल व्है कै अधिक विलाप कीन्हे
सूजन गई है पान प्यारी के दृगन मे ।
कारन विथा के तप्त साँसन की झारन सो
रगति रही है नाहि नीके अधरन मे ।।
कर पै कपोल दीन्हे चिंता मे मगन बैठी
वदन दुरो है नेक बिखरी लटन मे ।
ए हो मेघ! मुखकी दसा सो दरसात जैसे
मद परिजात चद आभा घने घन मे ।।

—पूर्ण ।

२१ २० २३ २२ १ २
आलोके ते निपतति पुरा सा वलिव्याकुला वा
५ ४ ३ ४
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
१९ ७ ८ १० ९
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
१२ १३ १४ ११ १६ १५ १७ १८
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ २२ ॥

धरणि गिरेगी मित्र बलि देती वह देखि तुहि।
कै लिखती मम चित्र विरह कृशित अनुमान करि॥
कै कहुँ पूछति होइ पिंजरा बैठी सारिकहि।
कबहुँ आवति तोहि सुधि प्यारी वा नाह की॥

—लक्ष्मण सिंह।

कै हो तू विलोकि है विकल वाहि पूजा माहि
मेरे आगमन काज देवन मनावती।
अथवा मु मेरी छीनता को अनुमान करि
ध्यान धरि व्है है मम चित्रहि बनावती॥
पींजरे में मैना जौन माधुरे वचन धारी
वाही सों बताती न तो व्है है इमि भावती।
'सारिके रसिक, तू तो स्वामी की पियारी ए री।
उनकी कछूक कहु तोको सुधि आवती ?'

—पूर्ण।

'कच्चिद्भर्तु · · रसिके' पाठान्तरे 'कच्चिद्भर्तु स्मरसि निभृते'।
(श्या० सु० दा०)।
निभृते=एकाकिनि, एकान्तवासिनि। पुरा=सद्य
वलिव्याकुला=देवताराधनेषु तत्परा॥

३ २ १ ५ ४
उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
५ ६ ७
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।
१० ९ ८ १२ ११
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्-
१३ १४ १५ १६
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती॥ २३॥

कै धरि बैठी बीन मलिन बसन जघान पैं।
गावन काज प्रवीन अकित पद मम गोत कुल॥
अँसुअन भिजई रोइ कै वीना को पोछती।
कैंधो भूलति होइ फिर फिर सीखी तान हू॥

—लक्ष्मण सिह।

अथवा लखैगो मेघ सज्जन! वियोगिनी को,
वसन मलीन वीन जघा पै सवारती।
ऊचे ऊचे बोलन मे मेरे गोत वारे गीत
भावन सो गावन को मन मे विचारती॥
आँसुन की धारा परे तत्री तव तीती होति
ज्यो त्यो पोछि ताहू को सुगान अनुसारती।
शोक की सताई गाय पावै नही बार बार
आपही उठावै तान आपही विसारती॥

— पूर्ण।

३ २
शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
७ ६ ५ ४
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः।
१० ८ ११
मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयंती
१२ १४ १३ १५ १६
प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदाः॥ २८॥

कै मन बरन प्रवीन रहे महीना अवधि के।
गिनि गिनि धरनी मीत सुमन देहरी के चटे॥
कै मोहनि संयोग मम आगम अनुमान करि।
यही नारि-वियोग होत नाह के विरह मे॥

—लक्ष्मण सिंह।

अथवा जब्द मीत। जब ते बिछोह भयो
चढ़े गेह देहरी पै फूल जौन दिन दिन।
अवधि बिसूरि नम मासन के लेखिबे को
धरनि धरानल पै ध्वै है तिन्हें गिन गिन॥
अथवा प्रथम जौन मेरे परिरंभन के
ध्वै है रस लेती मन ही मान तिन तिन।
बहुधा वियोग माँहि सुन्दरी त्रिया की भांति
ऐसे ही विनोदन बितावती है छिन छिन॥

—पूर्ण।

'देहलीदत्तपुष्पैः' पाठान्तरे 'देहली मुक्तपुष्पैः'
'सङ्गम' पाठान्तरे 'संयोग'
'संयोग' का पाठभेद 'संजोग'
} (श्या० सु० दा०)

देहलीमुक्तपुष्पैः = प्रतिदिनं गृहद्वार्थ स्थाने देहल्यां समर्पितानि यानिपुष्पाणितैः।

२ १ ७ ६ ८ ५
सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः
१२ ९ १० ११ ४ ३
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।
१८ २० १२ २२ १६ १३
मत्संदेशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे
१७ १४ १५ २१
तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः॥ २५॥

लगी रहति इन कामन प्यारी। दिन विरहा दुख होत न भारी।
डरौं अधिक रातिन दुख होई। करन काज जब काज न कोई॥
तू मम दूत तासु हितकारी। रहियो बैठि अर्धनिशि वारी।
लखियो नारि पतिव्रत करती। बिगत नींद शय्या करि धरती॥
—लक्ष्मण सिंह।

दिन मे अनेक काज लागे रहे ताते वाहि
व्यापत बिसेस न प्रभाव दुख भारी को।
पर घन! जामिनी निपट सोक धामिनी में
मालति अपार पीर व्है है सुकुमारी को॥
नींद ते रहित परी छिति पै अचैन चित
देखहुगे सखा सती भामिनी हमारी को।
बैठि कै झरोखे माँहि कहि कै सदेस मेरो
आनँद असेस दीजो दुखिया विचारी को॥
—पूर्ण।

'सौधवातायनस्थ' पाठान्तरे 'सन्नवातायनस्थ' (श्या० सु० दा०)।

१ २

आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैकपार्श्वां

३ ६ ४ ५

प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।

११ ८ १० ९ ७

नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या

१२ १४ १३ १५ १६

तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ २६ ॥

चिन्ता विथित परी तन छीना । एक करौट सेज पतिहीना ॥
जिमि पूरब दिशि देत दिखाई । कला मात्र निकम्यो शशि आई ॥
छिन समान बीततिही रतियां । मो सँग करत केलि रसबतियाँ ॥
रोइ रोइ अब तिनहिं बितावति । विरह तप्त आँसू बरसावति ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

देखहुगे मन की बिथा सो तन छीन परी
एकही करौट तृन पल्लव बिछाय कै ।
मानो दिसि पूरब के मूल में बिदित वेग
उदित निसेस कला नग दरसाय कै ॥
निमिख सी रैन जो बिताई ह्वै चैन करि
मेरे संग वा ने मन माने सुख पायकै ।
सोई रैन वाही संग पहार सम ताको, हाय,
रही सो बिताय तात आँसुन बहाय कै ॥

—पूर्ण ।

'सन्निषण्णैकपार्श्वां' पाठान्तरे 'सन्निकीर्णैकपार्श्वा',
'क्षणइव' पाठान्तरे क्षणमिव'
विरहमहतीम्' पाठान्तरे विरहजनितं' । (श्या० सु० दा०)

४ ३ २ १

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टा-

५ ७ ६ ९ ८

न्पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं सन्निवृत्तं तथैव।

१२ १० ११ १३

चक्षुःखेदात्सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं

१४ १६ १५ १७ १८

साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥ २७ ॥

शीतल अमृत किरनि हिमकर की। परति आई झँझरिन विच घर की।
पूर्व प्रीति हित तिहि सँग धावत। तुरत नैन पाछे हटि आवत॥
सजल पलक तिन ऊपर लावति। बस वियोग अतिशय दुख पावति॥
खन सोवति जागति सी खन मे। भूमि कमलिनी जिमि उनमन मे॥

—लक्ष्मण सिह।

किरनै सुधाकर की सीतल सुधा के सम
धाम मे झरोखन सो होहि जौन प्रविसित।
जानि सुखदाई तिन्हे जाय तिन सनमुख
ज्यो की त्यो चितौन लौटि आवे सोक सरसित॥
आँसुन के भारन झुकी ही बरुनीगन सो
छाये निज नैन कामिनी यो होति दरसित।
मानो मेघमाला भई पावस के व्योम माँहि
थल की सरोजिनी न वन्द है न विकसित॥

पूर्ण।

५ ४ ६
निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
१ ३ २
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।
८ ९ ७ १० १२
मत्संभोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
१३ ११
माकांक्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥ २८ ॥

ताती स्वास भई तिय मुखकी। दायक मृदु होठन अति दुख की॥
फूँकि फूँकि तिन सों सरकावति। रूखी अलक कपालन धावति॥
चाहति तनक नींद झुकि आवै। मति सपने अपनो पति पावै॥
पै अँसुआ नैनन भरि लेहीं। लगन पलक छिनहू नहिं देहीं॥

— लक्ष्मण सिंह।

बिन ही फुलेल तेल मज्जन करत सुहृद
तातें अब कोमल हैं अलकें ललाम ना।
मंजुल अधर की दहन हारी सांसन सों
व्है रही अचल कौन पावै विसराम ना॥
सोऊ बस स्वप्न ही में चाहति मिलाप मेरो
तोऊ जब कहूँ भाँति पावति अराम ना।
आँसू भरे नैनन सों नेक हू न ठौर तौ हूँ
कामिनि करत नींद आवन की कामना॥

—पूर्ण।

'नूनमागण्डलानम्' पाठान्तरे 'नूनमागण्डलम्बम्'
'त्वमुपनयेत्' पाठान्तरे 'क्षणमपि भवेत' | (श्या० सु० दा०)।

१ ५ २ ४ ३
आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
६ १० ७
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ।
८ ११ १४
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं
१३ ९ १२
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥ २९ ॥

विरहा प्रथम दिवस मृगनैनी । बिन माला बाँधी जो बैनी ।
मेरेहि हाथन खोलन जोगू । शाप अन्त जब रहै न सोगू ॥
भई कठोर गई न सँवारी । परति कपोलन पै दुखकारी ॥
सरकावति फिर फिर अँगुरिन ते । नख न बने जिनके बहु दिन ते ।

—लक्ष्मण सिंह ।

माला छोरि ताकी मैने बाँधी हुती बेनी जौन
सोग भरे दारुन वियोग के प्रथम बार ।
खोलहुगो नाहि मैं ही बितैगो जबहि शाप
ताप निरवारि सब आनद हिये मे धार ॥
बार नाहि बेनी के अकोमल असम रूखे
बिखरि-बिखरि परे प्यारी मुख के उभार ।
दीरघ नखन वारे प्यारे-प्यारे हाथन सो
बाल तिन बारन सम्हारी करैं बारबार ॥

—पूर्ण ।

'तां मयोद्वेष्टनीयाम्' पाठान्तरे 'सा मयोद्वेष्टनीया' । (श्या० मृ० दा०)
दाम हित्वा = माला त्यक्त्वा ।

८ २ १ ५ ७

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती

४ ३ ६

शय्योत्संगे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।

९ ११ १० १३ १२

त्वामप्यस्त्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं

१४ १६ १८ १७ १५

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा॥ ३०।

सेज परे कोमल खरे बिन आभूषण गात।
राखति अबला होइगी परी विकल बिलखात॥
तेरेहु आँसू भरवा देगी अवसि बहाय।
सरस हृदय जन होत है बहुधा मृदुल स्वभाव॥

- लक्ष्मण सिंह।

अबला के अंग के उतरि गिरे आभरन
उतरनि मृदुलता में तैसो कृशता की है।
सेज परे जीवन को राखिबो कठिन भयो
दशा सुकुमारी की रहति मुरछा की है॥
आँसू नवनीर वारे तेरे हू उमगि देहै
नीरद ! प्रिया की गति भरी करुना की है।
कोमल मरम होत जिनके हृदय मीत !
तिनकी सुबानि होति बहुधा दया की है॥

—पूर्ण।

'परुष' पाठान्तर 'कोमल'। 'स्वभाव' का पाठान्तर 'स्वभाय'।
(श्या० सु० दा०)

६ २ १ ४ ३ ५ ७
जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-
१० ८ ९ ११
दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि।
१४ १३ १५ १७ १२ १६
वाचालं मां न खलु सुभगम्मन्यभावः करोति
२४ २३ २१ २२ १८ २० १९
प्रत्यक्षन्ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत् ॥ ३१ ॥

जानत हूँ मो मे लगी वाके मन की प्रीति।
याते प्रथम वियोग मे ऐसी करतु प्रतीति ॥
अपन बडाई करि कछू मैं न बजावतु गाल।
बेगि तुहू लखि लेहिगो मेरो कह्यो हवाल ॥

— लक्ष्मण सिंह।

मोही में समानो रहै मेरी कामिनी को मन
जामे भरपूर प्रीति मेरी ही समाई है।
ताते मैं विचारत हूँ मेरी प्रिया अगना की
ऐसी दसा पहिले वियोग ने बनाई है ॥
ऐसो जिन चित्त मे विचारियो बलाहक ! कै
निज को सुभग जानि गाई मैं बडाई है।
योरे ही समै मे तुम देखिहौ प्रतच्छ आपै
दसा तासु तैसी सब जैसी मैं बताई है ॥

—पूर्ण।

२ १ ३

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं

५ ४ ६

प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्।

७ १० ८ १३ ९

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या

११ १२

मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ ३२ ॥

बिन अंजन सूनो भयो अलकन रोकी सैन।
बिन मदिरा भूल्यो सबै भ्रू विलास सुख दैन॥
दृग बाँयो मृगनयनि को हलि है पहुँचत तोहि।
मीन झकोर्‌यो जलज जिमि शोभा भामनि मोहि॥

—लक्ष्मण सिंह।

घेरे रहैं अलकैं सो पलकैं सकैं न डोल,
कामिनी के नीके नैन अंजन विहीन की।
विरह महान बस त्यागो मद पान तासों,
भूली है भृकुटि भंग ऐसी गति दीन की॥
सुन घरी ताको पाय ए हो मीत जलधर!
बायी आँख फरकैगी प्यारी छवि लीन की।
सुखमा सुखद ह्वै है ऐसी वा समै की मनो
कंज सो विचल कीन्हो हल-चल मीन की॥

—पूर्ण।

'क्षोभाच्चल' पाठान्तर 'क्षोभाकुल'। (श्या० सु० दा०)
नयनम् = वामांगीन अप। श्रीतुलाम् = श्रीसादृश्यम्।

१४ १ १३ ३ २
वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
५ ४ ७ ६
र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।
८ ९ ११ १०
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
१७ १५ १२ १६
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥ ३३ ॥

बाम उरू वा बाम की मम नख अक विहीन।
नित की मुक्ताकिकनी विधिवशात् तजि दीन॥
सहरावन के जोग वह मेरे हाथन मीत।
कचन कदलीखम्भ लो फरकेगी रँग पीत॥

—लक्ष्मण सिह।

गोरी छवि लीन नख रेखन विहीन जा मे
चारुता है कदली सरस अभिराम की।
सोग मे वियोग के भई है दूर जाते प्रभा
सदा सुखदायी मुकताहल ललाम की॥
सुखद समागम के अत में जु मेरे कर
सेवन की जोग रीति जैसी रस काम की।
मेघ, सुखधाम, तेरे धाम मे पधारत ही
सोई वाम जघा फरकैगी प्रिय वाम की॥

—पूर्ण।

'परिचित' पाठान्तरे 'विरचित' (ग्या० मु० दा०)।

२ १ ३ ४ ५

तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-

७ ६ ८ ९

दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।

१६ १० ११ १३ १२

माभूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचि-

१५ १४

त्सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थिगाढोपगूढम्॥ ३४॥

ताछिन यदि सोवति मिलै सुख निद्रा वह बाल।
मौन गहे बैठयो तहाँ तू रहियो कछु काल॥
मरे गलबाही दिये मति सपने मे होइ।
गरज सुनत तेरी जलद सो सुख देइ न खोइ॥

—लक्ष्मण सिंह।

विनती इती है सखा! भौन मे पहुचि मेरे
मेरी प्रिय प्रेमिनी को जागती जु पावै ना।
तो तू तासु पीछे अवसर इक जाम दीजै
नेकहूँ गरज को सबद तू सुनावै ना॥
स्वप्न मे मिलन ह्वै है मो सो मनमोहिनी सो
ता सो भाग ताकी सुख नींद उचटावैना।
यहै छिन माहि मेरे कंठ ते सरकि हाथ
मंजु भुज बेलिन की ग्रंथि छूटि जावै ना॥

—पूर्ण।

'अन्वास्यैनां' पाठान्तरे 'तत्रासीनः।' 'सहस्व' पाठान्तरे 'सहेथा'
(श्या० सु० दा०)।

१ ३ २
तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
८ ७ ४ ६ ५
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ।
१३ ११ ९ १०
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
१६ १४ १५ १२ १७
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥ ३५ ॥

फिर जल शीतल पवन करि दीजो वाहि जगाय ।
मृदुल मालती कलिन सँग प्रफुलित चित ह्वै जाय ॥
चमकन बारी माँहि तुहि लखिहै दीठि उठाय ।
तब तू बातें मन्दधुनि यों कहियो समुझाय ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

परसि सलिल तेरो सीतल है पौन जौन
ताके मद झूकन जगैयो प्रान प्यारी को ।
मुकुलित मालती समूहन के साथ साथ
प्रफुलित कीजियो पयोद ! सुकुमारी को ।
ह्वै कै चकित जबै ताकै सो झरोखे ओर
दामिनी वलित वेस वानिक तिहारी को ।
लागियो सुनावन सरस मोर बारे बैन
नीरद सुहावन ! वा मान जोग नारी को ॥

—पूर्ण ।

'गर्भ' पाठान्तरे 'कम्प' (स्या० सु० दा०) ।

३ ५ ४ १ ११ २ १०
भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं
७ ६ ९ ८
तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ।
१२ १७ १८ १३ १६
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
१४ १५
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥ ३६ ॥

सखा तेरे पी को जलद मैं हूँ पतिव्रती ।
सँदेसो लै वाको तव निकट आयो सुनु सखी ।
चलैं मेरी मन्दी धुनि सुनि विदेसी तुरत ही ।
करैं वाञ्छा खोलैं पहुँचि घर बेनी तियन की ॥

—लक्ष्मण सिह ।

हे हे सौभाग्यवती ! तुव प्रिय पति को मैं सखा आहुँ प्यारो ।
लायो ताको सँदेसो तुव निकट सखी ! मेघ मैं प्रीति वारो ॥
उत्कंठा सों विदेसी चलत तियन की छोरिबे काज बेनी ।
धावैं हैं मो थकेहू मम धुनि सुनि कै श्रौन आनंद देनी ॥

—पूर्ण

'तत्सन्देशैर्हृदयनिहितै' पाठान्तरे 'तत्सन्देशान्मनसि निहिताद्' (श्या० सु० दा०) ।

१ ३ ४ ५
प्रत्याख्यातं पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
७ ६ ८ ९ १०
त्वामुत्कण्ठोच्छ्‌वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य चैवम्।
१३ ११ १२ १४
श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनानां
१६ १५ १७ १८
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात्किंचिदूनः॥ ३७॥

इतनो कहत तोहि मम प्यारी। जिमि हनुमत को जनक दुलारी।
सीस उठाय निरखि घन लैहे। प्रफुलित चित ह्वै आदर दै है॥
सुनि है तिहि विधि कान लगाई। तेरो बचन सुभग सुखदाई॥
सुहृद हाथ तिय पिय सुधि पावति। सो मिलाप ते कछु घटि भावति

—लक्ष्मण सिंह।

ज्यों सीता पौन पूतैं, तिमि सुनि इतनो वाम तोको लखैगी।
दै कै सत्कार पूरो, प्रमुदित चित ह्वै बैन तेरी सुनैगी॥
जो नारी मित्र द्वारा निज प्रिय पति की छेम की बात जानै।
तो वे प्यारे पिया के मिलन सरिस ही चित्त मे मोद मानै॥

—पूर्ण।

सम्भाव्य=सत्कृत्य।

६ १ २ ४ ३ ५
तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
८ ७ १० ११
ब्रूयादेवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।
१२ १५ ९ १८ १४ ११
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
१९ १७ १८
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ३८ ॥

मम वचनन निज बचन मिलाई। यो वा मो कहियो समुझाई ॥
क्षेम सहित भरता नित तेरो। करत रामगिरि माहि बसेरो ॥
पूछत है तेरी कुशलाता। कहि विरहिनि अपनी तू बाता ॥
प्रानी सबहि काल के भोगू। प्रथम कुशल ही पूछन जोगू ॥

—लक्ष्मण सिंह।

तू है जीवोपकारी नेहि हित अथवा मानि कै बात मेरी।
नान्मो यो बालियो कै तुव पति निवसै राम के शैल ऐरी ॥
जीवै है मो वियोगी अरु कुशल समाचार पूछै सु तेरे।
ऐसी ही बात बोलै सब तजि पहिले आपदा जाहि घेरे ॥

—पूर्ण।

'ब्रूयाद्' पाठान्तरे 'ब्रूया', 'वियुक्त' पाठान्तरे 'वियुक्ता।'
'पूर्वाभाष्य.. प्राणिनामेतदेव' पाठान्तरे 'भूताना हि क्षयिषु
करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत्।'
क्षयिषु करणेषु = नश्यमानेषु शरीरेषु।
(श्या० सु० दा०)।

१० १६ ११ ५ ६ १२ ७
अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
७ १३ ४ ८
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन।
१५ ९ १
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
१८ १७ १९ ३ २ ४
सङ्कल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः॥ ३९॥

कीनो विधि बैर रोकि दीनो पन्थ आवन कौ
दूर पै बसायो जाय केतो पछतायो है॥
चित्त की उमग तेरे अगन मिलावै अग
दूबरी तुहू तौ वह दूबर सवायो है॥
बिरहा तपाई देह दीरघ तू लेति स्वाँस
दोऊ इन बातन मे तोते अधिकायो है॥
तेरे उत्कण्ठ गात नीर जात नैनन ते
बाढी अभिलाषा सोऊ आँसू झरिलायो है॥

—लक्ष्मण सिह।

जैसी तू दूबरी व्है तपति तिमि अहै तप्त औ छीन सोऊ।
तो मैं आँसू उसासै जिमि लखियतु त्यो है विथा लीन सोऊ॥
उत्कठा है दुहूँ को, विवस बिछुरि सो आय नाही सकै है।
तौ हू सकल्प द्वारा सब विधि सम व्है पीव तो मे मिलै है॥

—पूर्ण।

'प्रतनु' पाठान्तरे 'मुतनु'
'उष्णोच्छ्वास' पाठान्तरे 'दीर्घोच्छ्वास।' (ग्या० नु० दा०)।

५ ६ २ १ ३
शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्ता-
७ ९ ८ १० ४ ७
त्कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ।
१४ १२ ११ १३
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृष्ट-
१५ १६ १७ १८
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥ ४० ॥

प्रगट कहन हूँ जोग बात सखियन के आगे ।
तो मुख परसन लोभ कहतु हो कान न लागे ॥
परयो दूरि अब जाय दृष्टि जहँ पहुँचि न पावति ।
श्रवन सुनन गति काग जहाँ तनकहु नहिं आवति ॥
स्वामि साप-बस पायके उत्कण्ठित निस दिन रहत ।
तोहि सुनावन वचन ये रचि रचि मो मुखते कहत ॥
— लक्ष्मण सिंह ।

होती जो बात तेऊ प्रगट कहन को सामने हू सखी के ।
तो हू या हौंस होती मुख लगि कहिबे कान में भावती के ॥
सो प्रेमी रत्न तेरो दरस परस को जाहि सौभाग्य नाही ।
मेरे द्वारा सुनावै तोहि सुवचन ये जो रचे शोक माही ॥

——पूर्ण ।

१ २
श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
४ ३ ५ ६
वक्त्रच्छायां शशनि शिखिनां वर्हभारेषु केशान्।
९ ७ ८
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्-
१० १३ १२ १६ १४ ११ १५ १७
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥ ४१ ॥

मिले भामा तेरो सुभग तन श्यामा लतन मे ।
मुखाभा चन्दा मे चकित हरिणी मे दृग मिलें ॥
चलोर्मी मे भौहे चिकुर बरही की पुछन मे ।
न पै हाँ काहू मे मुहि सकल तो आकृति मिले ॥

—लक्ष्मण सिह ।

भामा ! श्यामा लता मे तन चितवन हू चारु चौकी मृगी में।
केकी पख माही कच मुख सुखमा सोहती है ससी मे ॥
भासै भू भ्र ग सी त्यो लहर नदिन मे पै अहो प्रान प्यारी ।
जैसी शोभा तिहारी तेहि सरिस नही एक हू मे निहारी ॥

—पूर्ण ।

'दृष्टिपात' पाठान्तरे 'दृष्टिपातान्' }
'वक्त्रच्छाया' पाठान्तरे गडच्छाया' } (श्या० सु० दा०)

२ ५ १ ३ ४

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-

६ ७ ९ ८

मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्त्तुम्।

१२ १० ११ १४ १३

अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे

१६ १५ २० १९ १८ १७

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः॥ ४२॥

शिला पै गेरु ते कुपित ललना तोहि लिखि के।
धर्यो जौलों चाहूँ तन अपन तेरे पगन मे॥
चलैं आँसू तौलौं दृगनमग रोकैं उमगि के।
नही घाता घाती चहत हम याहू विधि मिलैं॥

—लक्ष्मण सिंह।

गेरु सो चित्र तेरो विरचि विच शिला मान के कोप वारो।
चाहूँ हूँ मैं चित्र द्वारा परि तुव पग पै मान मोचूँ तिहारो॥
त्यों ही आँसू बहैं सजल दृगन सो जाय नाही निहारो।
हा हा वैरी विधाता सहत न मिलिबो चित्र हूँ मे हमारो॥

—पूर्ण।

३ ४ २ १
धाणसिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य वाले
५ ६ ७ ८ ९
दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पंचवाणः क्षिणोति।
११ १० १६ १४ १३ १५
घर्मान्तेऽस्मिन् विगणय कथं वासराणि व्रजेयुः
१२
दिक्संसक्त प्रविततघनव्यस्त सूर्यातपानि ॥ ४३अ ॥

पर्‌यो हूँ मैं तेरे सुखद मुखते दूर युवती,
खरो छेदै मेरे कृशित तनहूँ को रतिपती।
कटै कैसे प्यारी दिवस अब वर्षा ऋतु लगी,
मिटी भानुज्ज्वाला उमडि घनमाला नभचढी ॥

—लक्ष्मण सिह।

८ ७ ६
मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
४ ५ ३ २ १
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु ।
९ १६ १८ १०
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
११ १३ १२ १५
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥ ४३ ॥

जु तू प्यारी मोको मिलति कहुँ भावी स्वपन में ।
भुजा ऊँची दोऊ करि चहतु लागूँ तव गरे ॥
दशा ऐसी मेरी निरखि वनदेवा दृग भरे ।
बड़े डारे आँसू पतन पर मोती जिमि झरे ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

कैसे हू स्वप्न में जो लहि भरन चहूँ अंक में तोहि प्यारी ।
तौ निद्रा की दशा में गगन बिच दोऊ देहु बाहें पसारी ॥
देखैं ना सो अवस्था वनसुरवनिता शोक धारे महान ।
आँसू के बिन्दु त्यागैं द्रुमन दलन पै स्थूल मोती समान ॥

—पूर्ण ।

४ ३ २ १
भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
६ ५ ७ ८
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
२२ ९ २१ १० ११
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
१२ १६ १८ १९ १७ १४ १५ १३ २०
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमभिस्तवेति ॥ ४४ ॥

दक्खिन मुख आवति चली मिलि तुसार सँग ब्यारि।
देवदारुपुट तोरती तिहि रस सोधो सारि ॥
सो भरि अपने अंक मैं या हित लेतु लगाय।
नागरि तो तन परसि मति मो तन परसे आय।

—लक्ष्मण सिंह।

हे प्यारी पौन जोई परसि लहलहे सोहने देवदार।
आवै है या दिसा को परिमल तिनके छीर की लै अपार ॥
भेटूँ हूँ कामना कै हिम गिरिवर की पौन सोई सुहाई।
होवै है भाव ऐसो सुखद पवन सो भेटि कै तोहि आई ॥

—पूर्ण।

५ ४ ३ १ २
संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
७ ६ ९ ८ १०
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ।
१२ १५ ११ १३ १४
इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे
१६ १९ १८ १७
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥ ४५ ॥

चाहतु सारी रैन हू छिन समान कटि जाय
दिवस भोर ते साँझ लौं बिन सताप नसाय ॥
हरि हरि दुर्लभ आस ये या मन भयो बिहाल ।
तेरे कठिन वियोग से सुनि मृगनैनी बाल ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

कैसे ह्वै जायँ छोटी निमिष सरिस ये जामिनी जौन भारी ।
कैसे ह्वै जाय थोरी कठिन दिवस की पीर सन्तापकारी ॥
ऐसी एती करै है दुरलभ बिनती चित्त मेरो दुखारी ।
गाढी भारी बिथा सो बिन सरन भयो मो अहो प्रान प्यारी ॥

—पूर्ण ।

'गाढोष्माभिः' पाठान्तरे 'गाढोष्णाभिः' । (श्या० सु० दा०)

१ २ ३ ४
नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
५ ६ ७ ८ १० ९
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम् ।
११ १२ १५ १४ १३
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
१८ १६ १७
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ४६ ॥

मैं अपनो तन राखि रह्यो धरि के अभिलाष हिये बिच भारी ।
धीरज तूहूँ धरे किनि भामिनि जाइ मरी मति सोचकी मारी ॥
काहु पै दुख सदा न रह्यो न रह्यो सुख काहु के नित्त अगारी ।
चक्रनिमी सम दोउ फिरै तर ऊपर आपनी आपनी बारी ॥

— लक्ष्मण सिंह ।

आशा ही के सहारे अतुलित दुख माहि मैं धरूँ धीर जैसे ।
तू हू हे भागवन्ती दुसह विरह में राखु री बोध तैसे ॥
ना कोऊ नित्य भोगै अति सुख, अरु ना नित्य ही दुख भारी ।
ऊँची नीची अवस्था लखियतु जग माहि चाल ज्यों चक्रवारी ॥

— पूर्ण ।

'विगणयन्नात्मनैवावलम्बे पाठान्तरे
'विगणयन्नात्मनानावलम्बे ।'
'नितरां' पाठान्तरे 'सुतरां'
'सुखमुपनतं' पाठान्तरे 'सुखमुपगतं ।' (द्या० मु० दा०)

५ ४ १ ३ २
शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
६ ८ १० ७ ९
शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।
११ १२ १३ १४
पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
१७ १५ १६
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥ ४७ ॥

मम शाप की औधि मिटै तबही जब शेष की सेज पै जागै हरी।
इन चार महीनन को अब तू दृग मीचि बिताय दै धागि धरी ॥
मिलि है फिर कातिकी रातिन मे हम देखि है चाँदनी चारु खरी।
बुझि जायगी हौंस सबै जियकी बिरहा दुख जो दिन दूनी करी ॥

—लक्ष्मण सिंह।

बीतैगो शाप मेरो भुजग शयन ते विष्णु जागै जबै री।
तासों ये मास चारो तिय दृग अपने मूंदि कै दै बितै री।
पूरी ह्वै है उमगे सकल दिनन की वा समै प्रान प्यारी।
ऐ है आनद वारी जबहि सरद की जामिनी चदवारी ॥

- पूर्ण।

'शेषान्मासान्' पाठान्तरे 'मासानेतान्।' (ब्या० मु० दा०)।

१ ३ ५ २ ४
भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
६ ७ ९ ८ १०
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा ।
२२ २३ ११ २१ १२
सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
१९ १८ १३ १६ १५ १४ १७ २०
दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन्कामपि त्वं मयेति ॥ ४८ ॥

और कहूँ सुनु एक दिना हियरा लगि मेरे तू सोइ रही ।
आवत नीद न बेर भई जगि औचक रोइ उठी तब ही ॥
पूछी जु मैं धन बारहि बार तो तैं मुसकाइ कै ऐसे कही ।
देखति ही सपने छलिया तुमने एक सौत की बाँह गही ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

या हू वा ने कही है इक निसि गर सो लागि सोई हुती तू ।
जागी तू औचकै ही पुनि अति दुख सो बाल रोई हुती तू ॥
मैं बार बार पूछ्यो तबहि बिहँसि तैं बैन ऐसे उचारे ।
मैं देख्यौ स्वप्न ऐसो रमत इक तियै तू छली प्रान प्यारे ॥

—पूर्ण ।

'भूयश्चाह त्वमपि' पाठान्तरे 'भूयश्चापि त्वमसि ।'
'सस्वन' पाठान्तरे 'सत्वर ।'

१ ३ ४ २ ५
एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
९ ७ ६ ८ १०
मा कौलीनाच्चकितनयने मय्यविश्वासिनी भूः ।
१२ १४ ११ १३ १५ १६
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
१७ १८ १९
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ४९ ॥

पाय पते इनते मृगलोचनि जानि लै जीवत है पति तेरो ।
लोग लुगाइन की चरचा सुनि तू विश्वास तजे मति मेरो ॥
नेह की रीति बड़े न कही कुम्हलात कछू जब मीत न नेरो ।
भोग बिना अभिलाष बढ़ावत चिन्ह लखे बढ़ि जात घनेरो ॥

—लक्ष्मण सिंह ।

बातें ऐसी पते की सुनि मृगनयनी ! जानु तू छेम मेरी ।
या मे विश्वास कै तू पुरजन चरचै नेक ना कान दे री ॥
प्यारी ! तू या न सोचै बहुत विरह मे होत है नेह ऊनो ।
पूरी होवै न जामें दिन दिन तेहि मो होत है प्रेम दूनो ॥

—पूर्ण ।

'चकितनयने' पाठान्तरे 'असितनयने' 'विरहेध्वमिनस्ते तु' पाठान्तरे 'विरहे व्यापदस्ते हि ।' (श्या० सु० दा०)
कौलीन = जनप्रवाद ।

५ ४ १ ३ २
आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
७ ८ ६ ९
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः ।
१० १२
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्त्वद्वचोभिर्ममापि
११ १३ १४
प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥ ५० ॥

दै धीरज मेरी पतिनी को । प्रथम विरह व्याकुल सजनी को ।।
चलियो तुरत जलद वा गिरि ते । खोदी त्र्यम्बक वृषभ जिन्गिरि ते ।।
लाइ प्रिया की कछुक निसानी । अरु वा मुख की कुशल कहानी ।।
मेरेहु प्रान राखियो ताता । भए मलिन जिमि कुन्द प्रभाता ।।

— लक्ष्मण सिंह ।

नारी है मो सताई प्रथम विरह की धीर ताको धरैयो ।
नदी जाके बिदारे शिखर तेहि महाशैल तें लौटि ऐयो ।।
लैयो वा की निसानी कुशल वचन हू मोहि वा के सुनैयो ।
ये वासे कुंद ऐसे अतिसय मुरझे प्रान मेरे बचैयो ।।

—पूर्ण ।

'आश्वास्यैव' पाठान्तरे 'आश्वास्यैना ।' 'मे' पाठान्तरे 'ते ।'
'शैलादाशु' पाठान्तरे 'शैलादस्मात् ।' (श्या० मु० दा०)

२ १ ७ ५ ६ ३ ४
कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
८ ११ ९ १० १२
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।
१५ १७ १६ १३ १४
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
२१ १९ १८ २०
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥ ५१ ॥

बन्धु काज मम तैं इतो स्वीकार किया कि नाहिं।
लटत थक तव मौन तें नेक न मो मन माहिं॥
तू बिन बोलेहु बरसि मेटत चातक प्यास।
सज्जन जन उत्तर यही पूरवत याचक आस॥

—लक्ष्मण सिंह।

या अंगीकार कीन्हा हित करि करिबो बंधु को काज ए तू।
बूझा गंभीरता सो नहिं दबकर लगै जो "करूँगो" कहै तू॥
याचे ही देत पानी पपिहन गन कों तू सदा मौन ठानी।
ऐसी ही रीत पूरै सुजन जनन की सोइ स्वीकार बानी॥

—पूर्ण।

'कल्पयामि' पाठान्तर 'तर्कयामि।' (श्या० सु० दा०)
प्रत्यादेशात् = अनङ्गीकारात्। धीरता = तूष्णीम्भावम्।

७ ९ ८ ५ ६
एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
२ ३ ४
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ।
११ १ १२ १०
इष्टान्देशाञ्जलद विचर प्रावृषा संभृतश्री-
१८ १७ १५ १३ १४ १६
र्माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥ ५२ ॥

कै बिरही कै सखा सुमिरि के । दया दृष्टि मो ऊपर करिके ॥
पूरन कीजो बिनती मोरी । सब विधि उचित सुहृद जन केरी ॥
चलियो फिर मन मे जित आवै । पावस सुखमा सङ्ग सुहावै ॥
पलहु न विज्जु विरह होइ तो को । जैसो भयो शाप बस मो को ॥
—लक्ष्मण सिह ।

भ्राता के भाव सो वा धरि हिय करुना दीन वा मोहि जानी ।
कै दीजै काज मेरो अनुचित बिनती हे सखा चित्त आनी ॥
भावै जो देस तो को तिन बिच बिचरो पावसी सोभ धारी ।
न्यारी होवै न तो सो इक छन छनदा रावरी प्रान प्यारी ॥
—पूर्ण

'प्रियमनुचित प्रार्थनावर्तिनो' पाठान्तरे 'प्रियसमुचित प्रार्थन चेतसो ।'
'क्षणमपि च' पाठान्तरे 'क्वचिदपि न ।' (श्या० सु० दा०)

इति श्रीकालिदास विरचिते मेघदूतकाव्ये उत्तरमेघः ।

केचन प्रक्षिप्ता श्लोकाः

२ १ ३
इत्याख्याते सुरपतिसखः शैलकुल्यापुरीषु
४ ५ ८ ७ ६ ९
स्थित्वा स्थित्वा धनपतिपुरीं वासरैः कैश्चिदाप ।
१४ १३ १२ ११ १०
मत्वागारं कनकरुचिरं लक्षणैः पूर्वमुक्तैः
१५ १६ १८ १९ १७ २०
तस्योत्संगे क्षितितलगतां तां च दीनां ददर्श ॥ १ ॥

इन्द्रसखा (मेघ) ने इस प्रकार कहे जाने पर पर्वतो, नदियो और पुरियो पर रुक रुक कर कुछ दिनो में धनपति की पुरी को प्राप्त किया और पूर्वोक्त लक्षणो से (यक्षके) स्वर्णोपम गृह को समझ कर उसके भीतर भूमितल पर पडी हुई दीन उस (यक्षपत्नी) को देखा ।

५ १ २ ७ ८ ६

तस्मादद्रेर्निगदितमथो शीघ्रमेत्यालकायां

१० ९ ११ १२

यक्षागारं विगलितनिभं दृष्टिचिह्नैर्विदित्वा।

१६ १५ १३ १४

यत्संदिष्टं प्रणयमधुरं गुह्यकेन प्रयत्नात्

१७ १९ १८ २० ३ ४

तद्गेहिन्याः सकलमवदत् कामरूपी पयोदः ॥ २ ॥

कहा जाता है कि तदनन्तर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मेघ ने उस पर्वत से अलकापुरी मे शीघ्र आकर और कांतिहीन जैसे यक्षगृह को दर्शनीय चिन्हो से जानकर यक्ष द्वारा प्रयत्न पूर्वक जो प्रणय मधुर सदेश दिया गया था वह सब उसकी पत्नी से कह दिया।

३ ४ २ ९ १०
तं संदेशं जलधरवरो दिव्यवाचाचचक्षे
७ ५ १ ८ ६
प्राणांस्तस्य जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः।
१४ १३ १५ ११ १६ २
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमना सापि तस्थौ स्वभर्तुः
१९ २२ २३ २१ २० १७ १८
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥ ३ ॥

जच्छवधू कुसलातहित धरि हिय मित्र उछाह,
कह्यो सँदेसो जाइ सो दिव्यवचन जलवाह।
पाइ कुसल भरतार की हरखी सो मन माँहि,
करि सज्जन सो वीनती को तुष्ट्यो जग नाहि।
—लक्ष्मण सिह।

४ ३ १ २ ७ ८
श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
९ १० ६ ११ ५
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।
१६ १२ १३ १५ १४
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
१८ १७ १९ २१ २०
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शाश्वत् ॥ ४ ॥

सुनी एती बातें धनपति जु भाषी जलद की,
दया जी में आई रिस मिटत ताही छिन भई ।
मिलाये दोउन को विपति हरि लीनी शपथ की,
सदा भोगौ वाञ्छाफल हरखि यो आसिस दई ।

—लक्ष्मण सिंह ।

जानी ज्योंही कहानी विरह दुखित वा यक्ष की यक्षपाल,
मोच्यौ त्यो शाप ताको रिस तजि सबही हीय ह्वै कै दयाल ।
प्यारी प्यारे मिलाये सबदुख तजिकै पूर्ण आनंद पूरे,
दोऊ स्वच्छन्द भोगें नित प्रति मन के भोग के साज रूरे ।

—पूर्ण ।

१३ १४ १५
इत्थंभूतं सुरचितपदं मेघदूताभिधानं
७ ६ ८
कामक्रीडाविरहितजने विप्रयुक्ते विनोदः।
२ १ ३ ५ ४
मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणता, बुद्धिभावः कवीनाम्
११ ९ १० १२ १६
नत्वार्यायाश्चरणकमलं कालिदासश्चकार ॥ ५ ॥

इस (काव्य) में मेघ का विशिष्ट कौशल, कवियों की बुद्धिमत्ता और वियोगी तथा कामक्रीडा से रहित जनों का विनोद है। आर्या के चरण कमल को नमस्कार कर कालिदास ने इस प्रकार के ललित पदोंवाले मेघदूत काव्य की रचना की।